लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

बनारसी बाई
विमल मित्र

'प्रियवर'

श्री अरविंद गुह को…

बनारसी बाई

संध्या उतर रही थी, मैं विडन स्क्वेयर की बगल से जा रहा था। कोई मीटिंग चल रही थी। औरतों की काफी भीड़ थी। सबके सिर पर पल्ला था। स्क्वेयर के बाहर भी बहुत से लोग खड़े थे। वह लोग भाषण सुन रहे थे या नहीं, यह तो नहीं मालूम लेकिन यह अवश्य लग रहा था कि मजे ले लेकर हँसी मजाक कर रहे थे।

थोड़ा कौतूहल हुआ मुझे।

एक तरफ एक लड़के को अकेले खड़े दत्तचित्त भाषण सुनते देखा तो उसके पास जाकर पूछा मैंने, किसकी मीटिंग हो रही है यह ?,

जवाब में हँस दिया लड़का। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया।

फिर से पूछा मैंने, औरतों की कैसी मीटिंग है ? कौन हैं यह लोग ?

मुस्कुराकर उस लड़के ने आपादमस्तक मुझ पर नजर डाली और जाने क्या सोचकर बोला, सती-सावित्रियों की—

फिर भी नहीं समझा मैं।

पूछा, सती-सावित्रियों की ?

—हाँ महाशय, साक्षात् सती-सावित्री, रामबागान की सती-सावित्रियों की।

फिर खड़ा नहीं रह सका मैं। जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा दिये। थोड़ी दूर ही गया था, स्क्वेयर की रेलिंग अभी पार नहीं की थी, माइक्रोफोन से निकलते शब्द अभी भी कानों में पहुँच रहे थे कि अचानक एक वृक्ष की आड़ में खड़े मनोयोग से भाषण सुनते एक व्यक्ति पर नजर पड़ी। छतरी की मूठ पर भार डाले, गर्दन झुकाये खड़ा था वह। चौंक कर ठिठक गया मैं, शक्ल पहचानी सी लगी।

मुखर्जी बाबू हैं न ?

धीरे से जाकर बगल में खड़ा हो गया, परन्तु उन्हें मेरी उपस्थिति का भान नहीं हुआ। दाढ़ी मूँछ काफी बढ़ी हुई थी, जाने कब से नहीं बनी थी। कोट की दशा भी बहुत खराब थी।

मैंने कहा, आप मुखर्जी बाबू हैं न ?

पहले तो जैसे वह मुझे पहचान ही नहीं पाये, पर केवल क्षण भर के लिये, फिर एकदम से चौंक उठे।

मैंने फिर से कहा, आप मुखर्जी बाबू हैं न ?

बिना कोई जवाब दिये वह चलने को घूम पड़े। ऐसा लगा जैसे पीछा छुड़ा कर भागना चाह रहे हों। मैंने झट से कोट की बाँह पकड़ ली।

तब भी उन्होंने मुझे न पहचानने का भान किया। बोले, कौन हैं आप ? मैं ठीक...

—पहचाना नहीं मुझे ? मैं डाक्टर साहब का भाई हूँ। मैंने कहा—

—कौन से डाक्टर साहब ? मैं तो डाक्टर साहब को...

इस तरह अगर-मगर करते हुए मेरा हाथ छुड़ाकर खिसक जाने की चेष्टा करने लगे वह। इस पर रास्ता रोक कर उनके सामने खड़ा हो गया मैं। सामने रास्ता बंद देखकर, घूमकर उल्टी दिशा में चलने का प्रयत्न किया उन्होंने।

फिर से उनके सामने आकर मैंने कहा, इतने साल बाद देखा है, पर मैं आपको भूला नहीं हूँ।

—लेकिन मैंने तो तुम्हें नही पहचाना भाई ! असहाय स्वर में उन्होंने कहा।

—आप कुछ भी कहें, पर मैं आज आपको नही छोड़ूँगा। जेन्किन्स साहब ने आपको बहुत ढूंढ़ा, प्रेमलानी साहब ने तो बिलासपुर आदमी भेजा, कटनी ट्रेन में चलनेवाले वेंडरो को भी आपको देखने को कहा। अपने घर को ताला लगा गये थे आप—जेन्किन्स साहब ने सारे सामान की लिस्ट बनाकर रेलवे के स्टोर मे रखवा दिया था—

मेरी ओर देखकर जैसे कुछ कहना चाहा मुखर्जी बाबू ने, पर मुँह से आवाज नहीं निकली।

मैंने पूछा, बनारसीबाई को पहचानते हैं आप ?

इतना सुनते ही उनका चेहरा फक्क हो गया, रंग सफेद पड़ गया। वही मुखर्जी बाबू जो मुझे देखते ही जेब से पान का डब्बा निकाल कर कहा करते थे, पान खाओगे भैया ?

पान खाने का नशा था उन्हें और यह नशा केवल उन्हें ही नही

उनकी पत्नी को भी था। बहुत बड़ा पानदान था उनके पास, जिसमें एक तरफ भीगे कपड़े में लिपटे हुए पान रक्खे रहते थे और दूसरी तरफ बने छोटे-छोटे खानों में लौंग, सुपारी, इलायची, तमाखू आदि रहते थे। श्रीमती मुखर्जी के मुँह में हर वक्त पान दबा रहता था, सोते-जागते चौबीसों घंटे पान चाहिये था उन्हें। हर रविवार को मुखर्जी बाबू कटनी जाते थे। पास-पड़ोस के लोग, जिसको जिस चीज की जरूरत होती थी, कह देते थे और वह हरेक की हर चीज ला देते थे।

जाने से पहले वह हमारे घर भी आते और आवाज लगाते, डाक्टर बाबू, ओ डाक्टर बाबू—

मेरे बाहर निकलते ही कहते, तुम लोगों के लिये क्या-क्या लाना है भैया ? मैं कटनी जा रहा हूँ, पूछो गुड़ चाहिये क्या ? सुना है कटनी में खजूर का गुड़ आया है—

और केवल गुड़ ही नहीं, किसी की साड़ी लानी होती तो किसी के गेहूँ पिसाने होते। तरह-तरह के काम होते थे कटनी के लिये। अनूपपुर में तो कुछ भी नहीं मिलता था। हफ्ते में एक दिन हाट लगता था। स्टेशन के पीछे की ओर बस्ती के किनारे खुले मैदान में दुकानें लगती थीं, उस दिन आफिस की छुट्टी होती थी, प्रेमलानी साहब का कारखाना बंद रहता था। हफ्ते भर की साग-भाजी, आलू-प्याज सब कुछ वहीं से खरीदकर रखना पड़ता था। बिलासपुर से कटनी को एक रेल लाइन गई थी—जबलपुर व बम्बई के लिये वहीं से ट्रेन बदलनी पड़ती थी। अनूपपुर, बिलासपुर और कटनी के बीच में पड़ता था। चारों ओर दूर-दूर तक ब्लैक काटन सोएल ( Black cotton soil ) के खेत फैले हुए थे, जिनमें गर्मियों में बड़ी-बड़ी दरारें पड़ जातीं; फिर जून के मध्य जब बरसात की पहली बारिश पड़ती, तो उन दरारों से साँप निकलने शुरू हो जाते—काले, लम्बे, पतले साँप जो घरों में आँगन, बरामदे, रसोई और तो और बिस्तर तक में घुस जाते। आफिस से सबको कार्बोलिक एसिड दिया जाता, जिसे मेहतर घर के चारों तरफ डाल देता, परन्तु उसके बावजूद भी साँप अंदर पहुँच जाते।

मैंने फिर पूछा, बनारसीबाई को जानते हैं आप ?

वह भी क्या घटना थी। सी० पी० की गर्मी थी, सारा दिन लू चलती, रात को भी नींद नहीं आती थी। बिजली न होने के कारण रोशनी और पंखे का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता था। नदी के किनारे

फूस के छप्परों के घर थे। कोई एक फुट होगी शोन नदी—कभी पानी होता, कभी नहीं। कॉन्ट्रैक्टर हुकुमसिंह के लोग घुटने तक कपड़े उठाकर नदी पार कर लेते थे। पथरीली जमीन थी, नदी के तल में भी पत्थर थे। उसी ऊँची-नीची जमीन पर अनूपपुर की कालोनी थी। कुछ बंगाली थे और कुछ हिन्दुस्तानी—सभी कन्स्ट्रक्शन के काम में लगे हुए थे। बीच-बीच में ऊँची जगहों पर सीमेंट की पक्की दीवालों पर फूस की छत के मकान बने हुए थे। घरों के बीच की जगह के गड्ढों में झाड़-झंखाड़ लगे हुए थे, जिनमें साँप-बिच्छुओं ने घर बना रक्खे थे। जिस दिन लू चलती, कोई घर से बाहर नहीं निकलता, पश्चिम की ओर से साँय-साँय करती हवा बहती। छतों का फूस उड़-उड़कर इधर-उधर जा पड़ता। सड़कों पर फैला कोयले का चूरा उड़-उड़कर घरों के बंद खिड़की-दरवाजों पर चिपक जाता, सारा घर धूल से पट जाता। प्रेमलानी साहब के कारखाने में काम करने वाले लोग नाक-मुँह पर कपड़ा बाँधे रहते। धू-धू करता फर्नेस जलता रहता। बिजली की आरी से लकड़ी की चिराई होती। लोहा गरम करके पीटा जाता, जिसकी आवाज कालोनी के लोगों के कानों में ताला लगा देती।

सबेरे आठ बजे जेन्किन्स साहब का आफिस खुलता और बाबू लोग जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते आफिस पहुँचते। बीच के छोटे कमरे में जेन्किन्स साहब स्वयं और चारों तरफ के बड़े कमरों में बाबू लोग बैठते। मुखर्जी बाबू एक लम्बी टेबिल पर कागज फैला कर स्केल पेन्सिल से ड्राफ्टमैन का काम करते और बीच-बीच में जेब से डिबिया निकालकर गाल में पान दबा लेते।

काम करते-करते नदु घोष कहते, ओ''''मुखर्जी बाबू, पान कहाँ है ?

मुखर्जी बाबू कहते, जेब से निकाल लो दादा, मेरे हाथ घिरे हैं।

—श्रीमती मुखर्जी के हाथ में मधु है दादा, ऐसा पान—कहकर नदु घोष दो पान निकालकर डिबिया वापस जेब में रख देते।

खाने बैठते तो प्रेमलानी साहब पत्नी से पूछते, यह बंगाली सब्जी कहाँ से आई ?

—मुखर्जी बाबू की पत्नी आई थी। पत्नी जवाब देती।

आलू, प्याज, मटर, सेम, जो कुछ भी कटनी से आता, श्रीमती मुखर्जी तरह-तरह की सब्जी बनाकर, कभी इसके घर तो कभी उसके घर भेज देतीं। सामान्य सब्जी भी वह इतनी अच्छी बनातीं कि लोग

उँगलियाँ चाटते रह जाते। कालोनी की कोई औरत इतनी अच्छी सब्जी नहीं बना पाती। बच्चा कोई हुआ नही था, बस पति-पत्नी, दो ही प्राणी थे घर में।

श्रीमती मुखर्जी कहतीं, सारा दिन बैठी-बैठी क्या करूँ दीदी, कुछ काम तो है नहीं, बस बैठी खाना बनाती रहती हूँ।

गृहणियाँ कहतीं, तुम्हारे हाथ की चीजें खाकर हमारे स्वामियों का स्वाद बदल गया है—घर का खाना पसंद ही नहीं आता। बड़ी मुश्किल में पड़ गये हैं हम लोग तो।

मुखर्जी पत्नी हँस कर कहतीं, क्या करूँ, स्वामी; बदलने का कोई उपाय नहीं है दीदी, नहीं तो वह भी कोशिश करके देख लेती।

अम्बिका मजूमदार अनूपपुर के स्टेशन-मास्टर थे। कालोनी में न रहते हुए भी कालोनी के लोगों के साथ काफी मिलना-जुलना था उनका। रोज अस्पताल से लगे खेल के मैदान में टेनिस खेलने आते थे। डाक्टर साहब, प्रेमलानी साहब, नटु घोष, हुकुमसिंह सभी खेलते थे। कालोनी की ताश मंडली में रात के बारह बजे तक ताश खेल कर, एक मील चल कर अपने क्वार्टर में लौटते थे अम्बिका बाबू। उनके लड़के के अन्नप्राशन में पूरी कालोनी आमंत्रित थी। सारी खरीदारी मुखर्जी बाबू ने ही की थी। तीन सौ का सामान दो सौ में लाकर दिया था उन्होंने। जेन्किन्स साहब भी आये थे। चाप, कटलेट, बकरी के मांस का कलिया; फिर दही, रसगुल्ले—

कटलेट खाकर जेन्किन्स साहब ने कहा था, वेरी गुड कटलेट, आठ साल हो गये ऐसे कटलेट खाये, किसने बनाये हैं ?

मिसेज मुखर्जी ने, मजूमदार ने जवाब दिया था।

साहेब ने पूछा, मिसेज मुखर्जी कौन हैं ?

—हमारे ड्राफ्ट्समैन मिस्टर मुखर्जी की वाइफ—

— आई सी, माइ कांग्रैच्युलेशन्स टु हर, साहब ने कहा था।

अन्दर जाकर मजूमदार के बताने पर मुखर्जी गृहिणी सीधी बाहर चली आई थी और साहब के सामने पहुँच कर नमस्कार किया था। कोई हिचक नहीं थी बर्ताव में। शान्तिपुरी डोरिये की साड़ी सलीके से पहने हुए थीं, मुख पर सलज्ज हँसी और माथे पर गोल बिन्दी थी।

मुस्कुराते हुए खड़े होकर साहब ने कहा था, आपका कटलेट बहुत अच्छा हुआ—

कहकर हँस दिये साहब। साथ ही सब हँस पड़े थे। साहब की हिंदी पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

खाने के बाद मुखर्जी गृहिणी ने पान लाकर दिया।

बोलीं, यह खाइये साहब, यह भी मेरे हाथ का है।

नटु घोष की पत्नी ने कहा था, तुम्हारे साहस की बलिहारी है भाई, उस लाल मुँह वाले साहब के सामने जाने की हिम्मत कैसे पड़ी तुम्हारी। हमें तो देखकर ही डर लगता है।

इसके बाद बाबू लोग खाने बैठे। ग्रास मुँह में जाते ही प्रेमलानी साहब वाह-वाह कर उठे। बोले थे, मिसेज मुखर्जी बड़ी अच्छी कुक हैं—

नटु घोष ने कहा—मुखर्जी महाशय, जवाब नहीं है श्रीमती मुखर्जी का—

मजूमदार बोले—चाप, कटलेट बनाने की मर्जी नहीं थी मेरी। हम लोगों के घरों में आता ही किसको है बनाना और कारीगर यहाँ मिलता कहाँ है? मिसेज मुखर्जी ने स्वयं प्रस्ताव रक्खा कि मांस ले आयें तो चाप कटलेट मैं बना दूँगी—

जंगल में रहते-रहते शहर की बातें जैसे भूल गये थे लोग। जेन्किन्स साहब तो सीधे विलायत से इंजीनियर की इस नौकरी पर आये थे। रेडियो, टेलीविजन, रेफ्रीजीरेटर, लाइट, फैन के देश से एकदम सी० पी० के इस जंगल में। जहाँ न मटन मिलता था और न आइसक्रीम। साँझ होते-होते मच्छरों का झुंड सिर पर व कानों के पास भनभनाने लगता था। फिर साँप, बिच्छू, केंचुएं, मकड़े, चींटी, खटमल तो थे ही। गरमी से घबराकर कभी-कभी तो साहब शरीर का कपड़ा भी उतार फेंकते और जोर-जोर से खुजाने लगते। धूप से सिर जल भुन कर खाक हो जाता।

प्रेमलानी साहब भी शहर के आदमी थे। सिंध हैदराबाद के रहने वाले थे। करांची में नौकरी करते थे। वह आफिस शायद बन्द हो गया था अचानक। अखबार में विज्ञापन देखकर इस नौकरी के लिये प्रार्थना-पत्र दे दिया था उन्होंने।

नटु घोष बंगाल में नौकरी ढूँढ़-ढूँढ़ कर परेशान हो गये थे। कैसी भी नौकरी नहीं मिली। बहुत दिन घर की रोटियाँ तोड़नी पड़ी थीं

उन्हें बैठकर। अंत में विज्ञापन देखकर इस नौकरी के लिये दरख्वास्त देने पर यह नौकरी मिली थी उन्हें।

सबके पीछे ऐसी ही कोई न कोई घटना थी। खुशी से कोई नहीं आया था वहाँ। स्टोर्स के बड़े बाबू कलकत्ते में पचास साल की नौकरी के बाद रिटायर हो गये थे। आराम से बाकी जीवन व्यतीत कर सकते थे वह। सात्विक पुरुष थे। स्वपाक आहारी थे, किसी का छुआ नहीं खाते थे। विवाह नहीं किया था। आराम से थे। व्याज के सामान्य रुपयों से गुजारा कर रहे थे। अचानक बैंक फेल हो गया।

कहते थे, मैंने जीवन में कभी किसी को धोखा नहीं दिया नटुबाबू —पर मैं ही जीवन के अंतिम दिनों में ठगा गया—

नटु घोष ने जवाब दिया था, भगवान की मार सबसे ऊपर है, यह तो कहावत ही है भूधर बाबू।

भूधर बाबू न तो पान खाते थे न नसवार सूंघते थे। सिनेमा देखने की आदत भी नहीं थी। आगे पीछे बाल-बच्चों का भी झंझट नहीं था। पर एक धर्म-कर्म का कष्ट अवश्य था उन्हें।

कहते, कैसे देश में आकर पड़ा हूँ जहाँ न कोई मन्दिर है न कोई ठाकुर देवता—

गंगास्नान की सदा की आदत थी उन्हें। कलकत्ते में गंगा घर के पास ही थीं। अपनी झाड़ू व आसन साथ ले जाते थे और सारा घाट खुद धोते थे। साहब-कम्पनी की नौकरी थी। धोती के पल्ले के नीचे शर्ट पहनकर ऊपर से कोट चढ़ा लेते थे। आफिस में ईमानदार समझे जाते थे।

छोटा आफिस था। सोचा था जीवन के बाकी दिन धर्म-कर्म में बिता देंगे। वही उनका नशा था। किसे पता था कि नसीब में यह लिखा था।

कहते, साहबों के पास नौकरी करता हूँ इसलिये गुडमार्निंग कहना पड़ता है उन्हें, नहीं तो वह लोग क्या मनुष्य है।

नटु घोष कहते, मनुष्य नहीं हैं तो क्या है। देखते नहीं सात समुद्र तेरह नदी पार करके इस देश में आये हैं, और हमारे सर पर बैठे राज कर रहे हैं।

भूधर बाबू कहते, म्लेच्छ है सब, जिनकी कोई जात धर्म न हो वह भी भला मनुष्य है! मैं तो रोज आफिस से लौटकर स्नान करता था महाशय—

—क्या कह रहे है ?

भूधर बाबू कहते, अब भी करता हूँ। यहाँ से जाने के बाद धोती कुर्त्ता उतार कर गमछा पहनूंगा और सारे कपड़े धोऊँगा—

अम्बिका बाबू के घर वह भी निमन्त्रित थे।

भूधर बाबू ने कहा था, मुझे माफ करना महाशय, मैं किसी के हाथ का बनाया नहीं खाता—

मजूमदार बोले थे, मेरे घर सारा खाना मुखर्जी गृहणी बनायेंगी। ब्राह्मण के अलावा मैं किसी को कुछ भी छूने भी नहीं दूँगा। परिवेशन भी वही लोग करेंगे।

तब भी भूधर बाबू खाने नहीं गये थे।

अगले दिन नटु घोष ने कहा था, आप आये नही कल, क्या कटलेट बनाये थे श्रीमती मुखर्जी ने, जेन्किन्स साहब तो खाकर बिल्कुल—

भूधर बाबू बोले, वह सब तामसिक आहार है, उनसे मन की जड़ता बढ़ती है।

नटु घोष बोले, जड़ता बढ़े या और कुछ हो, इतने दिन बाद खाने को मिले, जान में जान आई जरा, ऐसे कटलेट तो कलकत्ते में भी खाने को नहीं मिले कभी—

नौकरी के लिए दरख्वास्त देते समय भूधर बाबू ने सोचा नही था कि ऐसी जगह होगी। आकर चकित रह गये थे। नदी मे स्नान करने जाते अवश्य थे। पर उसमें पानी ही कितना होता था। धोती तक तो भीगती नहीं थी सिर की बात तो बहुत दूर थी। उसी पानी में खड़े होकर नमः नमः करके इष्ट मंत्र का जप कर लेते। मन प्रसन्न नहीं होता। इतने साल हो गये थे अनूपपुर रहते, एक दिन भी जप आन्हिक करके तृप्ति नहीं हुई थी मन को। छुट्टी के दिन मुखर्जी बाबू आकर पूछते— कुछ लाना है बड़े बाबू, कटनी जा रहा हूँ —

भूधर बाबू कहते, आलू खत्म हो गये थे, आ जाते तो—

मुखर्जी बाबू कहते, तो दीजिये न ! मै तो जा ही रहा हूँ, साथ ही लेता आऊँगा—जेन्किन्स साहब के लिये दो दर्जन मुर्गी के अण्डे भी लाने है—

घबरा जाते भूधर बाबू।

—फिर रहने दीजिये मुखर्जी बाबू, मुर्गी के अण्डों से छुई चीज की मुझे जरूरत नहीं है—मैं उपवास कर लूंगा, मर जाऊँगा पर आपकी

तरह जात नहीं गँवाऊँगा। नौकरी करने आया हूँ जात नहीं खो सकता—

पर मुखर्जी बाबू को बुरा नहीं लगता उनकी बात का। हँस कर हाथ में थैला झुलाते प्रेमलानी साहब के घर की ओर चल देते।

—कुछ मंगाना है क्या साहब।

—तुम जा रहे हो मिस्टर मुखर्जी, थोड़ा आटा पिसाना था, पिसा लाओगे?

—क्यों नहीं लाऊँगा। सब का सामान ला रहा हूँ। जेन्किन्स साहब घोष बाबू, सभी का कुछ न कुछ लाना है—डाक्टर बाबू के बीस सेर आलू लाऊँगा, आपके गेहूँ नहीं पिसवाकर ला सकता।

शुरू-शुरू में अनूपपुर में कुछ भी नहीं था। डाक्टर बाबू ही वहाँ के पहले व्यक्ति थे। तब यह सब घर मकान कुछ भी नहीं बने थे। शुरू में तम्बू में रहना पड़ता था। स्टेशन के किनारे-किनारे तम्बुओं की लाइनें लगी थीं। तब न तो प्रेमलानी साहब आये थे और न नटु घोष। डेढ़ सौ क्लर्कों में से एक भी नहीं आया था। बस जेन्किन्स साहब और डाक्टर बाबू आये थे, खड़गपुर से दो बक्से दवाइयों के आये थे, उन्हीं पर भरोसा था। हुकुमसिंह पहले ही आ गया था। नदी के उस पार दुमंजिले मकान में अपने रहने की व्यवस्था कर ली थी उसने। ऊपरी मंजिल लकड़ी की थी और छत टीन की। कुली मजदूर आये थे जो जंगल साफ कर रहे थे। मकान बना रहे थे, सड़कें बना रहे थे, अस्पताल बना रहे थे। और फिर एक के बाद एक आफिस शुरू हो गये थे। हुकुमसिंह के तीन मजदूरों को साँप ने काट लिया था। विषधर सर्प।

हुकुमसिंह बताता था, कैसा भयानक जंगल था यहाँ—बाघ आता था रात को—

दो शेर मारे भी थे हुकुमसिंह ने। नदी किनारे पानी पीने आता था रात को शेर। अपने दुमंजिले के कमरे से राइफल से दो बाघ मारे थे दो दिन में उसने। तब तक हम लोग नहीं आये थे। जेन्किन्स साहब भी नहीं आये थे।

कन्स्ट्रक्शन के काम में इन बातों से डरने से यह काम नहीं चला करता।

नई लाइन बिछाई जा रही थी। अनूपपुर से एक रेल लाइन उत्तर की तरफ चली गई थी। अनूपपुर के बाद दुर्वासीन, बिजुरि फिर मनेन्द्र-

गढ़ अन्तिम स्टेशन चिरमिरि होगा। शाल के बड़े-बड़े पेड़ थे, दोनों हाथों में तना नहीं समाता था। शाल और महुआ। आकाश को छू रहे थे वृक्ष। ऊपर की ओर आँखें उठाने पर कहीं-कहीं तो आसमान भी नहीं दिखाई देता था। शाम को काम खत्म करके मजदूर छावनी लौट आते थे सोने के लिये। आधी रात को शेर भालू आकर छावनी के चारों ओर चक्कर काटते। सुबह पंजों के निशान दिखाई देते।

बिजुरि से डाक व तार आते थे। डिस्पैच बाबू डाक खोलते।

खोलते ही मधुसूदन हाजरा कहते, अरे आज तीन जनों को बाघ ले गया है, सुना...

भूधर बाबू कहते—किसी दिन हमें भी ले जायेगा—

नदु घोष कहते, अनूपपुर में शेर नहीं आयेगा इतनी रोशनी, इतनी बन्दूकें—आपने क्या सोचा है कि बाघ को डर नहीं लगता?

मुखर्जी बाबू किसी बात में नहीं पड़ते। दत्तचित्त लम्बी ऊँची टेबल के सामने खड़े सेट स्क्वेयर व स्केल लगाकर कागज पर पेन्सिल से लाइनें खींचते जाते और बीच-बीच में जेब से डिबिया निकाल कर पान खा लेते।

नदु घोष कहते—मुखर्जी दो तो एक पान, हिसाब ही नहीं मिल रहा है—

मुझे याद है मुखर्जी बाबू को शुरू में नहीं देखा था मैंने। टेनिस खेलने आने वालों को ही पहचानता था बस। स्टेशन-मास्टर अम्बिका बाबू धोती पहनकर खेलते थे। हुकुमसिंह चुस्त पायजामा पहनता था। फोरमैन प्रेमलानी साहब तो पक्के अँगरेज थे। और जेन्किन्स साहब हाफ पैण्ट पहनते थे। ओवरसियर नगेन सरकार को भी पहचानता था। नगेन सरकार का विवाह नहीं हुआ था। दिनभर काम करके और शाम को घर जाकर हारमोनियम बजाते हुए गाते शाम के समय जब जंगल का मंगल खत्म हो जाता, कारखाने की आरी चलने की घड़घड़ाहट बंद हो जाती, हुकुमसिंह के मजदूरों द्वारा डाइनामाइट फटनी बन्द हो जाती तब दूर से आती ओवरसियर के घर से गाने की आवाज सुनाई देती।

वर्षा ऋतु के आकाश में जब काले बादल घिरे होते, अन्धकार में एक हाथ दूर खड़ा आदमी भी दिखाई नहीं देता, तब नगेन सरकार गाता—

नील आकाशेर असीम छेये
छड़िये गेछे चाँदेर आलो—

बलिष्ठ व्यक्ति था नगेन सरकार। मांसपेशियाँ मजबूत थी। गठा हुआ बदन था। हाफ पैण्ट पहनकर कारखाने का काम देखता। बहुत कड़ा ओवरसियर था। फोरमैन प्रेमलानी का प्रिय व्यक्ति था। स्वयं खड़े होकर सुबह से शाम तम काम कराता।

नटु घोष कहते, कल बड़ी रात तक गाते रहे नगेन बाबू—

नगेन सरकार कहते, क्या करूँ बताइये, आप लोग तो सब अपनी-अपनी बीबी के साथ रजाई में दुबक कर सो जाते है, मैं भला क्या करूँ?

—तो आपको शादी करने को किसने मना किया है? कर लीजिये!

नगेन सरकार हँसकर कहता—ठीक कर दीजिये न आप एक पात्री, मैं कर लूँगा शादी—

मुखर्जी गृहिणी कहतीं, मैं करूँगी तय तुम्हारे लिये लड़की?

—कर दीजिये मुखर्जीगिन्नी, पर लड़की देखने में आपके जैसी होनी चाहिये—

हँस देती मुखर्जी गृहिणी।

कहतीं, अपने मुखर्जी बाबू से कहो न जाकर, उनके तो मन ही नही भाती मैं—

नगेन सरकार कहता—जिसे आप पसंद नहीं आतीं धिक्कार है उसकी तकदीर को।

—तुम्हारे मुँह में घी शक्कर भाई।

हँसते-हँसते दुहरी हो जाती मुखर्जीगिन्नी। कंधे का पल्ला ठीक करके कहतीं, अभी तो खूब बातें बना रहे हो, पर आखीर में तुम भी उन्हीं के जैसे हो जाओगे देखना।

आप परीक्षा करके देख लीजिये ना—नगेन सरकार कहता।

—अब कहाँ हो सकता है भाई। मुखर्जी बाबू को कष्ट होगा।

—तो यह कहिये न कि आप ही नहीं छोड़ सकतीं—

और दोनों हो-हो करके हँस पड़ते।

मुखर्जी बाबू को मैंने सर्वप्रथम अपने घर पर ही देखा था। छुट्टियों में भैया के घर गया था घूमने-फिरने।

बाहर किसी को जोर-जोर से डाक्टर साहब, डाक्टर साहब आवाज सुनकर निकला—देखा सामने खड़े आदमी के एक हाथ में खाली थैले

थे और दूसरे में टीन का खाली बक्सा। बालों में टेढ़ी माँग, पाँवों में जूते और मुँह पान से भरा हुआ।

मुझे देखकर चौक से गये।

बोले—तुम कौन हो ?

—मैं डाक्टर बाबू का भाई हूँ, छुट्टियों में घूमने आया हूँ—मैंने जवाब दिया था।

—ओ···यह तो अच्छी बात है ! क्या करते हो ? नाम क्या है ?

बताया सब।

सुनकर बोले, ठीक है—अच्छा किया ! बहुत अच्छी जगह है, देखना चार दिन में ही मोटे हो जाओगे, मैं भी ऐसा ही दुबला-पतला था—

यह कहकर हाथ का छाता ऊँचा कर दिया और स्वयं ही हँस पड़े।

मुझे भी हँसी आ गई थी। पूछा था, आप शायद यहाँ काम करते हैं।

—हाँ, ड्राफ्ट्समैन की नौकरी है। दो-सौ रुपये में घर का खर्च चल जाता है। सौ सवा सौ रुपये महीना बच जाता है।

चुप रहा मैं। कहता भी क्या।

मुखर्जी बाबू कहने लगे—पर कलकत्ते में ? तीन सौ रुपये भी कम पड़ते थे, नाक में नकेल लगानी पड़ती थीं—क्यों ? ठीक कह रहा हूँ न ?

फिर मुँह नीचा करके बोले, यहाँ खर्च भी तो नहीं है कुछ।

—क्यों ? खर्च क्यों नहीं है ?

मुखर्जी बाबू बोले, अरे खर्च करूँगा किसमें ? मिलता है यहाँ कुछ ? और फिर दो जने कुल हैं गृहस्थी में—मैं और मेरी बीबी—

दो क्षण चुप रहकर बोले—कटनी जा रहा हूँ, हफ्ते भर के लिए आलू बैगन ले आऊँगा, खर्च तो मछली में होता है सो मागुर खरीदकर रख देता हूँ, खाओ जितनी खा सको—

इसी समय भैया बाहर आ गये थे।

—लो आ गये डाक्टर बाबू, बताइये आपके लिये क्या-क्या लाना है।

—पाव रोटी ला सकेंगे मुखर्जी बाबू ? भैया ने पूछा।

—आपने भी क्या कहा, जेन्किन्स साहब के अंडे ला रहा हूँ, प्रेम-

लानी साहब के बीस सेर गेहूँ पिसवा कर लाऊँगा, नटु घोष की बीबी की साड़ी, मजूमदार बाबू के लड़के का जूता—

—हँस पड़े भैया। बोले और कहने की जरूरत नहीं है मुखर्जी बाबू—

एक दिन खुद ही मुखर्जी बाबू ने यह काम अपने सिर ले लिया था। कम्पनी से रेल का पास मिलता था सामान की खरीदारी के लिये। पर जाये कौन ? ऐसा आदमी भी तो मिलना मुश्किल है जिस पर विश्वास किया जा सके। अंत में मुखर्जी बाबू ने कहा था—आप लोगों को आपत्ति न हो तो मैं जा सकता हूँ—

तभी से शुरू हो गया।

मुखर्जीगिन्नी से पूछने पर कहती, असल में बात यह है कि वह खाने के जरा शौकीन हैं—

मैं कहता, आपके हाथ का बना खाना मिले तो सभी खाने के शौकीन हो जायें—

वह कहतीं, खाना बनाने में भला कौन-सी ऐसी बहादुरी है—

नटु घोष की बहू कहती, तुमसे 'शुक्तुनि' बनाना सीखूँगी एक दिन—

मुखर्जीगिन्नी कहतीं, और सुनो, अब क्या मैं आपको खाना बनाना सिखाऊँगी दीदी ?

—नहीं भई, उस दिन तुम्हारे हाथ का बनाया खाना खाकर कितनी बड़ाई कर रहे थे वह।

—हाय राम, कब ?

—वही जिस दिन तुमने 'शुक्तुनि' बनाकर भेजी थी। उस दिन से रोज कहते हैं वैसी ही बनाने को।

मुखर्जीगिन्नी की गृहस्थी में कोई विशेष काम तो था नहीं। मुखर्जी बाबू के आफिस जाते ही काम खतम। फिर वह दोपहर को आते थे खाना खाने।

खाते खाते कहते, हाँ जी, नटु घोष कह रहा था, तुमने उनके यहाँ सब्जी भेजी थी—

—क्यों कुछ कह रहे थे क्या ? उस दिन ज्यादा बन गई थी इस-लिए भेज दी थी—

मुखर्जी बाबू बोले, एक दिन फिर मांस के कटलेट बनाना। सब बड़ाई कर रहे थे—

मकान सभी के छोटे थे—करीब-करीब एक जैसे। अनूपपुर से विलासपुर जाते हुए ट्रेन से मकानों की पंक्तियाँ दिखाई देती थीं। मकान छोटे अवश्य थे परन्तु थे अच्छे। हुकुमसिंह ठेकेदार ने नाप जोख करके बनाये थे। पानी नदी से बहँगी पर आता था। एक बहँगी एक पैसे में आती थी। प्रेमलानी साहब की बहू ने घर के सामने बगीचा लगा रक्खा था। पैसा बहुत था फोरमैन साहब के पास। तरह-तरह के फूल लगा रक्खे थे। खूब बड़े-बड़े गुलाब होते थे बगीचे में। कभी-कभी जेन्किन्स साहब के पास फूल भेज देती थीं मिसेज प्रेमलानी।

साहब अपनी टेबिल पर सजा देते थे।

पर एक दिन टेबिल पर बड़े-बड़े लाल-लाल फूल देखकर साहब ने पूछा—किसने दिये ?

इतने बड़े फूल पहले तो कभी नही आये। इतनी बड़ी-बड़ी पंखुड़ियाँ मानों भार न सह सकने के कारण अभी गिर पड़ेंगी।

—किसने दिये ब्वाय ?

—हुजूर, ड्राफ्ट्समैन बाबू की बीवी ने ! ब्वाय ने जवाब दिया।

यो मुखर्जीगिन्नी की हिम्मत भी कम नहीं थी। जेन्किन्स साहब रोज शाम को घूमने निकलते थे। एक हाथ में छड़ी और एक हाथ में कुत्ते की चेन। बहुत तेज कुत्ता था।

उस दिन मुखर्जीगिन्नी घोष बाबू के यहाँ से लौट रही थीं। रास्ते में साहब से सामना हो गया। उनका ध्यान कुत्ते में केन्द्रित था।

उनको देखकर मुखर्जीगिन्नी खड़ी हो गई और मस्तक से दोनों हाथ लगाकर बोली, नमस्कार साहब—

चौंक कर रुक गये साहब—

—कौन ?

हँसने लगी मुखर्जीगिन्नी। बोलीं, नहीं पहचाना साहब, उस दिन कटलेट खिलाये थे ?

कटलेट की बात उठते ही याद आ गया साहब को। बोले—कल फूल तुमने ही भेजे थे ?

—हाँ साहब, पसंद आये ?

—वेरी गुड, वेरी बिग साइज, बहुत पसंद आये तुम्हारे फूल।

कहकर जो साहब कभी नहीं हँसते थे वही साहब खूब हँसने लगे। शेकहैंड करने के लिए शायद आगे बढे।

मुखर्जीगिन्नी दो कदम पीछे हट गईं। हँसते-हँसते बोली—अच्छा चलूं साहब, नमस्कार—

साहब ने भी दोनों हाथ ऊँचे करके नमस्कार किया।

अगले दिन मिसेज प्रेमलानी को यह बात बताते हुए हँस पड़ी थीं जोर से मुखर्जीगिन्नी।

बोली थीं—क्या मुश्किल है दीदी, साहब ने आगे हाथ बढ़ा दिया—घर आकर कपड़े बदलने पड़े फिर से—

—क्यों, कपड़े क्यों बदलने पड़े बहन ?

—बदलती नहीं ? उनकी भी कोई जात है ? सूअर, गाय क्या नहीं खाते ये लोग।

उस दिन भूधर बाबू भी आश्चर्य चकित हो गये।

मुखर्जी बाबू ने कहा—सत्यनारायण की कथा है, जरूर आइयेगा बड़े बाबू—

—सत्यनारायण की कथा ? क्या कह रहे हैं ? आपके घर ?

—हाँ होती तो हमेशा है, पर कभी सबको बुला नहीं पाया।

—हमेशा होती है ? पुरोहित कहाँ से मिलता है ? बड़े बाबू ने पूछा—

—कटनी से लाता हूँ। मुखर्जी बाबू ने जवाब दिया।

—कटनी से पुरोहित लाते हैं ?

मुखर्जी बाबू बोले—वो तो लाना ही पड़ता है। यहाँ तो कोई मिलता नहीं।

भूधर बाबू ने पूछा—काफी खर्च पड़ जाता होगा ? कितना हो जाता है ?

मुखर्जी बाबू ने कहा—पुरोहित को सवा पांच रुपये दक्षिणा के देता हूँ—

—सवा पांच रुपये ?

—सवा पाँच रुपये भी न मिलें तो कटनी से कोई आयेगा ही क्यों ? दो दिन तो खराब होते ही हैं उसके यहाँ आने में। फिर यहाँ उसका रहना, खाना, नैवेद्य आदि वो है ही—

कटनी से पुरोहित लाकर सत्यनारायण की कथा कराने की बात सुनकर भूधर बाबू जैसे व्यक्ति भी सिर खुजाने लगे।

बोले, इसका मतलब है आपकी पत्नी बड़ी धर्मध्यान वाली हैं ?

मुखर्जी बाबू बोले, आप समझ सकते हैं यह तो, हम लोग हिन्दू हैं, यह सब कैसे छोड़ सकते हैं। मेरी पत्नी कहती है कि विदेश में नौकरी करने आये हैं। इसका मतलब यह तो नहीं है कि हिन्दुत्व खो दिया है—

भूधर बाबू बोले, जरूर आऊँगा मुखर्जी बाबू, ऐसे कार्यों में तो मैं हमेशा साथ हूँ, यही तो मैं भी कहता हूँ। विदेश में म्लेच्छों के पास काम करने आया हूँ, अपनी जात तो नहीं दी उन्हें। बड़ी अच्छी लगी आपकी बातें। आजकल के दिनों में ऐसी महिला भी हैं जानकर बड़ा सुख मिला, बड़ी आशा हुई—

बहुत स्वादिष्ट बना था प्रसाद।

मुखर्जीगिन्नी को मैंने प्रसाद बनाते देखा था।

उस दिन उपवास रक्खा था उन्होंने। सुबह ही नदी में स्नान कर आई थीं। अनूपपुर में सब सोये पड़े थे उस समय। चार बजे थे सुबह के।

सुबह अँधेरे चार बजे अकेले नदी में नहाने की बात सुनकर नटु घोष की बहू बोली थी—इतने अँधेरे में अकेले नदी पर जाने में डर नहीं लगा तुम्हें ?

—भगवान के नाम पर गई थी और आई थी—डर क्यों लगता ? मुखर्जीगिन्नी ने जवाब दिया था !

फिर शाम को पूजा खत्म होने पर प्रसाद से उपवास तोड़ा था उन्होंने।

नटु घोष ने कहा था, तुम्हारी पत्नी तो खूब है मुखर्जी !

भूधर बाबू बोले थे, सब औरतें अगर मुखर्जीगिन्नी जैसी हो जायें तो हमारे देश में चिंता ही किस बात की रह जाये—

ओवरसियर नगेन सरकार भी थे, उन्होंने कहा था—हारमोनियम होता तो मैं एक भजन गा देता—

मुखर्जीगिन्नी ने तुरत जवाब दिया—मेरे पास हारमोनियम है देवर जी, लाऊँ ?

—आपके पास हारमोनियम ? आप भी गाना जानती हैं ?

—थोड़ा बहुत गा लेती हूँ देवर जी, तुम लोगों के सामने गाने लायक नहीं—

नगेन सरकार जिद पकड़ गये ।

बोले, यह बहानेबाजी नहीं सुनूंगा मैं आपकी । गाना तो पड़ेगा ही आपको—

भूधर बाबू चुप थे । नटु घोष ने पूछा, तुम्हारी पत्नी को गाना-बजाना भी आता है मुखर्जी ?

सभी को आश्चर्य हुआ था । ऐसी धर्मशील महिला, इतनी भक्त, इतना बढ़िया खाना बनाती हैं, ऊपर से गाना भी जानती हैं !

मुखर्जीगिन्नी बोलीं, पहले तुम गाओ—

सारी उपस्थित महिलाएँ भी एक-दूसरे का मुँह देखने लगी थीं । नटु घोष की पत्नी ने कहा था, तुममें तो न जाने कितने गुण हैं भाई ।

मुखर्जीगिन्नी ने जवाब दिया, नहीं दीदी, इतना कोई गाना-वाना नहीं आता, सुन-सुनकर थोड़ा-बहुत सीख लिया है बस—

हारमोनियम निकाल लाई थीं मुखर्जी पत्नी । बहुत दिनों से काम में नहीं आया था । बक्स पर धूल जम गई थी ।

हारमोनियम देखकर नगेन सरकार ने खुश होकर कहा था अरे वाह ! यह तो डबल-रीड का हारमोनियम है, ऊपर से स्केल चेंजिंग भी है—बहुत कीमती है यह तो !

नटु घोष की पत्नी ने पूछा था, तुम्हारे पति को लगता है गाने का बहुत शौक है ?

हँस दी थीं मुखर्जी पत्नी ।

बोलीं, नहीं दीदी, उनको और गाने का शौक । उन्हें तो बस खाना और सामान खरीदना आता है—

—तो फिर तुमने हारमोनियम क्यों खरीदा ?

—यह कोई आज का है जाने किस युग में शादी के पहले खरीदा था, माँ ने खरीद कर दिया था ।

नगेन सरकार ने क्या गाया, किसी ने नहीं सुना । नटु घोष जम्हाई लेने लगे । प्रेमलानी साहब बच्चों को घर छोड़कर आये थे । उन्हें भी जाने की जल्दी थी । भूधर बाबू भी जाऊँ-जाऊँ कर रहे थे ।

उसी समय नगेन सरकार ने गाना बंद करके हारमोनियम मुखर्जी-गिन्नी की तरफ सरकाते हुए कहा, अब आप गाइये मुखर्जीगिन्नी—

मुखर्जीगिन्नी वोलीं, मैं क्या गाऊँगी अब गृहस्थी के चक्कर में यह सब तो कबका छोड़ दिया है, भूल-भाल गई अब तो सब—

कहकर हारमोनियम पर उँगलियाँ चलाने लगीं इधर-उधर। जरा देर बाद भजन की पहली लाइन शुरू की उन्होंने—

श्यामा माँ कि आमार कालो—

सीधे होकर बैठ गये भूधर बाबू।

नटु घोष को नींद आ रही थी, उनकी भी आँखें खुल गईं।

प्रेमलानी साहब भी आँखें बंद करके निमग्न होकर सुनने लगे। सब एकाग्र हो गये। गाने के स्वरों ने जैसे प्रातः की शीतलता ला दी। मैं मुखर्जीगिन्नी के बिल्कुल सामने बैठा था। बड़ी अच्छी लग रही थीं वह। माथे पर सिंदूर की बिंदी थी, खुले बाल पीठ पर फैले थे, टसर की लाल किनारे की साड़ी बदन पर, सिर पर पल्ला, सारे दिन के उपवास के बाद मुँह पर विनम्र प्रसन्नता। पूरा व्यक्तित्व लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। मुग्ध होकर सब उनका गाना सुन रहे थे।

क्या गाना था वह!

विभोर भूधर बाबू तो जैसे पूर्ण रूप से अपना आपा खो कर स्वयं को ही उस गाने का पात्र समझ बैठे थे। नटु घोष की जैसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था, मुँह बाये मुखर्जीगिन्नी की ओर देख रहे थे। उपस्थित औरतों के सिर से पल्ला खिसक गया था। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे सम्मोहन की छड़ी घुमा दी हो किसी ने सबके सिर पर।

गाना खत्म होते ही नटु घोष के मुँह से वाह-वाह के शब्द निकले।

प्रेमलानी साहब बोले—वंडरफुल—मार्वलस—

नगेन सरकार बोले, आप इतना अच्छा गाना जानती हैं और हम लोगों को इतने दिन उससे वंचित रक्खा—छिः छिः—

भूधर बाबू अब तक चुप थे। अब जैसे उनकी नींद टूटी। बोले, माँ-माँ—

फिर बोले, साक्षात् भगवान की कृपा न हो तो ऐसा स्वर किसी का नहीं होता है नगेन, यह तो साक्षात् माँ आ गईं हमारे बीच—

मुखर्जी पत्नी शर्म से गड़ गईं।

बोलीं, आप भी क्या कह रहे हैं बड़े बाबू, ऐसा कहकर शर्मिन्दा मत कीजिये आप मुझे! माँ के नाम का भजन गाने के लिये भी भला क्या स्वर की आवश्यकता होती है।

नटु घोष की बहू ने आगे बढ़कर मुखर्जी पत्नी का हाथ पकड़ लिया और बोलीं, तुम्हारे तो पाँव की धूल लेने की इच्छा होती है भाई—

बीच में ही रोककर मुखर्जी पत्नी बोलीं, छिः, छिः, ऐसी बात कहकर क्यों मुझे पाप चढ़ा रही हो दीदी—इतना कहकर नटु घोष की पत्नी के पाँव छू लिये उन्होंने ।

भूधर बाबू बोले, तुम्हारी जन्मपत्री है मुखर्जी बाबू ?

अब तक मुखर्जी बाबू एक कोने में चुप बैठे थे । जैसे कोई बात नहीं सुन रहे थे । भूधर बाबू की बात सुनकर बोले—नही बड़े बाबू, मेरी जन्मपत्री तो नही है ।

नटु घोष उछल पडे ।

बोले, क्यों ? आप क्या जन्मपत्री देखना जानते है बड़े बाबू ?

भूधर बाबू बोले, नहीं, देखता कि मुखर्जी बाबू की जन्मपत्री में पत्नी के स्थान पर कौन-सा ग्रह है, वृहस्पति के अपने स्थान पर हुए बिना भाग्य में ऐसी बहू नही होती किसी के—

सचमुच मुखर्जी बाबू का भाग्य पत्नी के मामले में बहुत ही अच्छा था । केवल खाना पकाना व गाना गाना जानती हों यह बात नही थी —अनगिनत गुण थे उनमें । घर शीशे की तरह चमकता था हमेशा । गंदगी से तो सख्त नफरत थी उनको । और फिर केवल अपने घर का ही नहीं । दोपहर को मुखर्जी बाबू के आफिस चले जाने पर काम काज से निपट कर किसी न किसी के घर जा बैठती और हाथ बँटाती काम में ।

एक दिन भर दुपहरी में घर से निकली और प्रेमलानी साहब के घर जा पहुँची । सीधे अन्दर जाकर आवाज लगाई—अरे ओ साहब-बहू कहाँ हो ?

मिसेज प्रेमलानी शायद उसी समय कमर सीधी करने बिस्तर पर लेटी थीं । भारी बदन की औरत थीं मुखर्जी पत्नी की आवाज सुनकर उठ बैठीं ।

तब तक पास पहुँच कर मुखर्जी पत्नी ने कहा—नींद में खलल डालने आ गई आज मैं साहब-बहू की—

—आओ बहन आओ ।

मुखर्जी पत्नी बोलीं—इतना सोती हो दीदी तभी तो इतनी मोटी

होती जा रही हो, यही हाल रहा तो थोड़े दिन बाद प्रेमलानी साहब की बाँहों के घेरे में भी नहीं समा पाओगी।

यह सुनकर मिसेज प्रेमलानी खिलखिला कर हँस पड़ीं, फिर बोलीं —अरे अब तो प्रेमलानी साहब बूढ़े हो गये हैं बहन।

– बुढ़ापे में ही तो ज्यादा मजा आता है साहब-बहू। इसी उमर में प्रीत गाढ़ी होती है—मुखर्जी पत्नी ने जवाब दिया।

अचानक प्रसंग बदलते हुए मुखर्जी पत्नी ने गम्भीर स्वर में कहा —अच्छा छोड़ो यह सब बातें, इस वक्त तो मैं तुम्हारे पास दूसरे काम से आई थी। यह बताओ तुम्हारे साहब की तबियत कैसी है ?

--क्यों ? उन्हें क्या हुआ ? आश्चर्य से मिसेज प्रेमलानी ने यह पूछा।

– लगता है तुम पति के बारे में कोई खबर नहीं रखतीं साहब-बहू। सुनो—

कहकर पल्ले की गाँठ खोलकर एक जड़ी निकाली मुखर्जी पत्नी ने और बोलीं -कल सुबह इसे अच्छी तरह धोकर सिल पर पीस कर साहब को पिला देना। उस दिन रास्ते में मिल गये थे तुम्हारे साहब। वह तो अनदेखा करके चले जा रहे थे। मैं ही पूछ बैठी कि 'कहो, कैसे हो साहब ?' कुछ सुस्त से लग रहे हो। तो बोले, 'आजकल कमर में बहुत दर्द है, इस कारण नींद अच्छी तरह नहीं आती'--तो इस जड़ी को पीने से दर्द भी चला जायेगा और नींद भी अच्छी आयेगी।

फिर मिसेज प्रेमलानी के कान के पास मुँह ले जाकर धीरे से बोली, पर एक बात है उस दिन साथ मत सोना याद रहेगा न ? छटपटाओगी तो नहीं ?

मिसेज प्रेमलानी खिलखिलाकर हँस पड़ीं मुखर्जी पत्नी की यह बात सुनकर।

—अच्छा चलूँ साहब-बहू, आज जरा जल्दी में हूँ। कहते-कहते दरवाजे से बाहर हो गईं मुखर्जी पत्नी।

नट्टू घोष की पत्नी फिर से गर्भवती हो गई थी। उसे देखने के लिये उसके घर की तरफ चल दीं वह। महरी आ गई थी काम करने, अतः दरवाजा खुला हुआ ही था।

अन्दर घुसकर आवाज लगाई उन्होंने दीदी, कहाँ हो ?

अन्दर से आवाज आई, आओ आओ—

बहुत से कच्चे बच्चे थे नटु घोष के। सबसे बड़ी लड़की सोलह साल की थी। उसके बाद तेरह का, बारह का, ग्यारह का—बच्चों की गिनती बढ़ती गई एक के बाद एक। अब तक तो जचगी कलकत्ते में ही होती रही इसलिये डर की कोई बात नहीं थी। पर घर से दूर इस जंगल में कहाँ दाई थी, कहाँ डाक्टर था और कहाँ दवाई थी। किसी नई दवाई की आवश्यकता पड़ने पर हेड आफिस को लिखना पड़ता था। तीन महीने बाद जाकर कहीं जवाब आता, दवा आने में और कुछ दिन लग जाते तब तक रोगी चाहे स्वर्ग ही सिधार जाता। शुरू-शुरू में तो दवा के अभाव में काफी लोग मर जाते थे। हेड आफिस को लिखने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ था। सुबह से ही अस्पताल के सामने भीड़ लग जाती। केवल कालोनी या कम्पनी के लोग ही नहीं आस-पास के गाँवों से भी लोग बीमार को लेकर चले आते। दस-दस बीस-बीस मील दूर से चल कर लोग दवा लेने आते। जितने लोग उतनी तरह की बीमारियाँ। शरीर में घाव हो जाता तो ठीक होने का नाम ही नहीं लेता जैसे।

जेन्किन्स साहब अंग्रेज आदमी थे। पता नहीं बीबी थी भी कि नहीं होगी भी तो सात समुद्र पार पड़ी होगी। यहाँ जगल में अकेली पड़ी मक्खी मारने के लिये नहीं आई थी। रोज रात को साहब का चपरासी गाँव जाकर किसी न किसी को पकड़ लाता था।

वैसे जेन्किन्स साहब आदमी अच्छे थे। पाँच रुपये हर रात के देते थे। और अगर कोई अच्छी तरह खुश कर देती तो पाँच के पन्द्रह भी हो जाते थे।

फिर जब रोग बढ़ता तो डाक्टर को बुलाते। कहते—फिर दर्द बढ़ रहा है—दवा दो—

दर्द कम होने के साथ दवा की मात्रा कम होती परन्तु चार दिन बाद फिर बढ़ जाती। यही क्रम चलता रहता था।

भूधर बाबू का कहना था, म्लेच्छ है म्लेच्छ—रोज आफिस से जाकर कोई शौक से थोड़े ही नहाता हूँ—

और तनखा के रुपये ? नटु घोष पूछते।

ले तो जा रहा हूँ तालाब में फेंकने को—भूधर बाबू जवाब तड़ से देते।

एक दिन भूधर बाबू ने पूछा—घर की क्या खबर है घोष बाबू ?

--उसकी चिंता नहीं है कोई बड़े बाबू, मुखर्जीगिन्नी देख रही हैं सब कुछ। उन्हीं पर छोड़ दिया है सब--घोष बाबू ने जवाब दिया।

तो वाकई में नटु घोष को जरा भी नहीं सोचना पड़ा। सब सँभाल लिया मुखर्जी पत्नी ने। हालांकि बड़ी-बड़ी लड़कियाँ थीं, पर उन पर थोड़े ही छोड़ा जा सकता था। आखिर तो जचगी का मामला था। बार-बार कहने पर भी घर नहीं गईं वह। मुखर्जी बाबू खुद ही पकाकर खाते रहे जो भी उनसे बना। घर की एक चाबी यद्यपि मुखर्जी पत्नी के पास थी लेकिन सोमवार की रात को चार बजे जो वह घर से निकलीं तो तीन दिन बाद घर में घुसी थीं। डर से अधमरी हो गई थीं नटु घोष की बीबी। परदेस और वह भी जंगल। जरा से भी कुछ हो जाये तो बच्चों को पानी देने वाला भी कोई नहीं था। पर मुखर्जी पत्नी उसे बराबर भरोसा दिलाती रही थीं और केवल मुँह जबानी नहीं, अपनी बात निभाई थी उन्होंने।

फैली हुई कालोनी थी--एक मकान यहाँ तो दूसरा वहाँ। एक घर की आवाज दूसरे में सुनाई नहीं देती थी। रात को सारी कालोनी खाँ-खाँ करती। शेर भालू चीते घूमते रहते। और भी बहुत से जीव-जन्तु थे। दिन में तो ठीक था--नदी के दोनों ओर के काले सूखे खेत दिखाई देते थे--शोरगुल भी होता रहता। नदी के उस पार पहाड़ से टिका हुकुमसिंह का लकड़ी का दुमंजिला घर था--उसके बाद जंगल ही जंगल। उत्तर की ओर नदी के किनारे भी एक पहाड़ था, जिस पर सुबह से ही पत्थर तोड़ने का काम शुरू हो जाता था। गड्ढा बनाकर कुली उसमें डायनामाइट दबा देते और भागकर दूर चले जाते। फिर जोर से विकट आवाज होती और पत्थर के टुकड़े चारों ओर बिखर जाते। लेकिन रात को बड़ा डर लगता। उस समय बिलासपुर से एक पैसेंजर ट्रेन आती थी, जिसके पुल पर से गुजरते हुए होने वाली आवाज से नटु घोष की पत्नी का दिल धड़कने लगता।

सोमवार को मुखर्जी पत्नी जब घोष के घर पहुँचीं तो वह सामने ही पायचारी करते दिखाई दिये।

मुखर्जी पत्नी बोलीं, भण्डार की चाबी दे दीजिये। और हाँ डाक्टर को बुलाने भेज दिया है न किसी को?

नटु घोष ने कहा, हाँ--

फिर उसके बाद उन्होंने जच्चा की देखभाल में दिन रात एक कर

दिया था। दादा जितनी बार देखने गये, मुखर्जी पत्नी की सेवा देखकर स्तम्भित रह गये थे। लड़का हुआ था। मिसेज घोष तो बस बच ही गई थीं। तकलीफ तो अधिक हुई ही थी, साथ-साथ रक्त नल की धार की तरह बहा था। लेकिन मुखर्जी पत्नी के चेहरे पर शिकन तक नहीं थी। बच्चों की देखभाल और जच्चा—ऐसे सँभाल लिया था सब, जैसे उनके बायें हाथ का खेल हो।

नटु घोष तो आभार से दब ही गये थे। कहा था, इतना किया आपने, कैसे धन्यवाद दूँ आपको।

मुखर्जी पत्नी ने कहा था, क्या कर पाई दादा, बच्चे तक को तो बचा नहीं पाई—

उसमें आप क्या कर सकती थीं, पत्नी बच गई यही बहुत है।

मुखर्जी पत्नी ने कहा था, आज आफिस चले जाइये आप—

—मैं आफिस चला गया तो कौन सँभालेगा ?

—मैं हूँ न !

नटु घोष ने कहा था, मुखर्जी महाशय को बहुत तकलीफ हो रही होगी। खाना भी खुद ही बनाना पड़ता होगा—

—कोई बात नहीं, बस आप इतना कह दीजियेगा कि मैं अभी दो दिन और घर नहीं आ पाऊँगी—

एक दिन साहब-बहू भी देखने आई थीं। तब तक श्रीमती घोष ठीक हो गई थीं। उन्होने कहा था, मुखर्जीगिन्नी ने इस बार मौत के मुँह से निकाल लिया मुझे, नहीं तो बच्चे बिना माँ के रह जाते—

घर लौटते समय नगेन सरकार के साथ सामना हो जाने पर वह बोले थे, बलिहारी है आपकी मुखर्जीगिन्नी।

हँसकर मुखर्जी पत्नी ने कहा था, क्यों मैंने क्या किया है देवर-जी ?

—आप मनुष्य नहीं हैं सचमुच—

—हाय राम, देवरजी क्या कह रहे हो ? मनुष्य नही तो क्या राक्षसी हूँ ?

—कारखाने में भी आपके बारे में यही बात हो रही थी—

—अच्छा तो कारखाने में यही काम होता है ? मुखर्जी पत्नी ने कहा।

—नहीं, मजाक नहीं मुखर्जीगिन्नी, डाक्टर साहब भी कह रहे थे कि इतनी सेवा तो अस्पताल की नर्स भी नहीं कर सकती। और भूधर बाबू कह रहे थे कि 'मनुष्य का कैरेक्टर ही सब कुछ होता है। कैरेक्टर अच्छा हो तो मनुष्य के लिये कुछ भी असाध्य नहीं होता। उनका कैरेक्टर ही खरा सोना है।' —

दूसरे दिन नगेन सरकार सीधे घर पर आ धमका। बाहर से ही आवाज लगाई, मुखर्जीगिन्नी, ओ मुखर्जीगिन्नी—

अन्दर से आवाज आई, कौन ? देवर जी ? आओ, आओ।

कहते-कहते सामने आ पहुँची और बोलीं, क्या हुआ देवर जी ? इस वक्त ? ड्यूटी नहीं है ?

कमरे के अन्दर आकर बैठते हुए नगेन सरकार बोला—आज की छुट्टी ली है।

—यह तुम्हारे हाथ मे क्या है देवर जी ?

—हनुमान जी के मन्दिर में गया था, प्रसाद लाया था वहाँ से।

हनुमान जी का मन्दिर अनूपपुर से चालीस मील दूर था, बैलगाड़ी से जाना पड़ता था।

मुखर्जी पत्नी ने मजाक करते हुए कहा—क्या बात है ? आजकल बड़ी भक्ति उमड़ रही है।

—नहीं मुखर्जीगिन्नी, ऐसी कोई बात नहीं है। इस बार तनख्वाह बढ़ी थी इसलिये प्रसाद चढ़ाने चला गया था।

—कितनी बढ़ी ?

—पचास रुपये। सोचा सबसे पहले आपको देकर आऊँ प्रसाद। पुण्यात्मा हैं आप। आपको देकर खाने से अधिक पुण्यलाभ होगा।

—तो फिर जरा रुको देवर जी, बासी कपड़े बदल आऊँ—उठते हुए मुखर्जी पत्नी ने कहा।

कहकर अन्दर गईं और टसर की साड़ी पहन आईं। दोनों हाथों से प्रसाद लिया और माथे से छुआ कर अन्दर रख आईं।

बाहर आकर बोलीं, अब तुम शादी कर लो देवर जी, अब तो तनखाह भी बढ़ गई है।

—अच्छी लड़की कहाँ मिलती है ? आप ढूंढ़ दीजिये—नगेन सरकार ने जवाब दिया।

—हाय राम, तुमने तो कमाल ही कर दिया देवर जी, बंगाल में भला लड़कियों का अभाव है ?

—तो ढूंढ़ दीजिये न अपनी जैसी एक, मैं आज ही शादी करने को तैयार हूँ।

इतना सुनते ही खिलखिला कर हँस पड़ी मुखर्जी पत्नी ! फिर बोलीं—लगता है देवर जी के बड़ी मन भा गई हूँ मैं ?

—इसमें भी कोई संदेह है ? भला आपके जैसी लडकी किसके मन नही भायेगी ?

—कहाँ, तुम्हारे मुखर्जी बाबू का मन तो जीत नहीं पाई अब तक — मुखर्जी पत्नी ने कहा।

—मैं नही मानता यह बात। अगर मुखर्जी बाबू खुद अपने मुँह से कहें तो भी विश्वास नहीं करूंगा।

—मत मानों। मैंने खुद एक दिन पूछा था उनसे कि यहाँ के सारे लोग मेरी प्रशंसा करते हैं पर तुम्हारे मुँह से तो अपनी बडाई में एक शब्द भी नहीं सुना कभी—

—तो क्या बोले ?

—उनकी बात छोड़ दो देवर जी, वह किसी के न लेने में न देने में। बस अपने खाने और सौदा खरीदने में मस्त हैं। अब मैं इतने दिन नटु घोष के घर रह आई पर उन्हें कोई मतलब नहीं, कोई गुस्सा नहीं।

—हमारे यहाँ तो सब आपकी बातें करते हैं—नगेन सरकार ने कहा।

—क्या कहते हैं ? उत्सुकता से मुखर्जी पत्नी ने पूछा।

—स्टोर्स के बड़े बाबू को तो पहचानती हैं आप, वही भूधर बाबू ? वह कह रहे थे—

—कौन ? वह ? जिनके सिर पर चोटी है ? बीच में ही मुखर्जी पत्नी ने पूछा।

—हाँ, बड़े सात्विक पुरुष हैं। रोज सबेरे नदी में स्नान करते हैं। फिर पूजा-पाठ करके किसी काम में हाथ लगाते हैं। बड़ी प्रशंसा करते हैं वह आपकी। और केवल भूधर बाबू ही नहीं जेन्किन्स साहब भी आपकी प्रशंसा करते हैं—

—वह तो मेरे हाथ के कटलेट खाकर।

—नही मुखर्जीगिन्नी, खाली यह बात नहीं है। नटु घोष की पत्नी की सेवा की बात उनके कानों तक भी पहुँच गई है। कह रहे थे कि अब अस्पताल के लिये एक नर्स लायेंगे, हेड आफिस चिट्ठी भेज दी है।

—कुछ भी कहो देवर जी, पर तुम्हारे साहब अच्छे आदमी नहीं हैं—

—क्यों ? क्या किया है साहब ने ?

—क्यों, रोज रात को गाँव से लकड़ी लाकर घर में रखना क्या अच्छी बात है ? तुम लोग इसका विरोध नहीं कर सकते ?

नगेन सरकार ने जवाब दिया, वह भी क्या करें बताइये। विदेश में रहने आये हैं मेमसाहब तो मिलती नहीं यहाँ, फिर कैसे दिन बितायें ?

—क्यों, तो क्या औरत के बिना रहा नहीं जा सकता ? अब यह बड़े बाबू हैं, तुम हो, तुम लोग कितनी औरतें लाते हो घर में ? तुम्हारे दिन नहीं कटते क्या ?

—हमारी बात और है मुखर्जीगिन्नी, हम ठहरे गरीब क्लर्क, ओवरसियर। हम लोगों मे तो खराब होने लायक योग्यता भी नहीं है—

—अच्छा देवर जी, यह जो तुम चालीस मील दूर कहीं मन्दिर में मानता मानने गये, तो तुम लोग क्या यहाँ अपने लिये एक मन्दिर की प्रतिष्ठा नहीं कर सकते ? विषय बदलते हुए मुखर्जी पत्नी ने पूछा।

—मन्दिर ? उसके लिए बहुत पैसा चाहिए मुखर्जीगिन्नी ?

—बस यहीं तो तुम लोगों की सामर्थ्य खत्म हो जाती है, जैसे ही किसी अच्छे काम की बात आई नहीं रुपये का अभाव पड़ जाता है—सब लोग क्या महीने में पाँच रुपये भी नहीं दे सकते ?

—पाँच रुपये से क्या होगा ? नगेन सरकार ने पूछा।

—क्यों, हर आदमी अगर पाँच रुपये दे तो मन्दिर नहीं बन सकता ?

तभी हिसाब लगाकर बता दिया मुखर्जी पत्नी ने। पाँच-पाँच रुपये सब दें तो तीन सौ तो वैसे ही इकट्ठे हो जायेंगे। और फिर कन्ट्रैक्टर हुकुमसिंह है, फोरमैन प्रेमलानी साहब है, डाक्टर बाबू है, तथा जेन्किन्स साहब तो हैं ही।

हिसाब लगाया कि तीन हजार रुपये इकट्ठे किये जा सकते थे।

उसके बाद सबके उत्साह और प्रयत्नों से मन्दिर बन गया था। प्रतिष्ठा के दिन की बात अभी तक याद है। कितना उत्साह था लोगों में ! सभी हिन्दू थे और अधिकतर घर गृहस्थी वाले थे। मकान, डाक्टर,

पानी की व्यवस्था तो कम्पनी ने कर दी थी। पर मन्दिर भी उतना ही आवश्यक था। मन्दिर की प्रतिष्ठा से हर हिंदू को सुविधा थी। भगवान की जरूरत तो हर किसी को होती है। नटु घोष को भी स्वीकार करनी पड़ी थी।

कहा था, बात तो ठीक ही थी मुखर्जीगिन्नी की, अभी उस दिन मेरी पत्नी ने शिव का उपवास किया, पर जल चढ़ाने के लिये शिवलिंग था ही नहीं।

प्रेमलानी साहब ने मन्दिर का प्रस्ताव सुनकर कहा था, वेरी गुड आइडिया, पचास रुपये मैं दूँगा और पत्थर व सिमेंट कारखाने से मुफ्त मिल जायेगा—

हेड आफिस भी पत्र लिख दिया था—जेन्किन्स साहब ने स्वयं बहुत सिफारिश की थी।

नटु घोष की बहू ने कहा था, धन्य है तुम्हारी माँ भाई, वह तो तुम्हारी प्रशंसा करते नही अघाते—

प्रेमलानी साहब की पत्नी बोली थी, बहिन, तुम्हारी कोशिश से ही यह संभव हुआ—

इस पर मुखर्जीगिन्नी ने कहा था, पहले बन जाने दो साहब बहू, फिर कहना—

मेस में रहने वाले छोकरे क्लर्कों ने भी उनकी बहादुरी के गुण गाये थे।

भूधर बाबू ने कहा था, देखा, मैंने कहा नहीं था कि पृथिवी पर असली चीज कैरेक्टर होता है, कैरेक्टर खरा हो तो रुपया पैसा कुछ नहीं होता—मुखर्जीगिन्नी का कैरेक्टर ही खरा सोना है।

शुरू-शुरू में मुखर्जी पत्नी के कैरेक्टर के सम्बन्ध में छोकरे क्लर्कों को सन्देह हुआ था, यह सच है। मुखर्जी महाशय जब पत्नी के साथ स्टेशन पर उतरे थे तो स्टेशन-मास्टर अम्बिका मजूमदार ने देखा था।

ए० एस० एम० कंजिलाल बाबू से पूछा था उन्होंने, कौन है यह आदमी ? क्या कह रहा था तुमसे ?

कंजिलाल बाबू ने कहा था, कन्स्ट्रक्शन का आदमी है, यहाँ नौकरी पर आया है—

साथ में शायद बहू है ?

उनको ही सन्देह नही हुआ था, शुरू-शुरू में हरेक को संदेह होता था। मुखर्जी महाशय के बगल में मुखर्जीगिन्नी को देखकर छोकरे तो ओठों ही ओठों में मुस्कुरा पड़ते थे। पति से बिल्कुल ही उल्टी थीं वह। उनके देखने, चलने, पान खाने, वात करने आदि सबमें एक बाँकपन सा था, जो बरबस अपनी ओर खींच लेता था। और मुखर्जी महाशय एकदम निरीह, निर्बोध से दिखते थे, कपड़े लत्ते एकदम सीधे-साधे और बातचीत में अत्यन्त सरल।

शुरू में तो नटु घोष की बहू भी चकित रह गई थी।

मजूमदार की बहू से उसने कहा था, क्यों दीदी, तेरह नम्बर के कमरे में जो आये हैं, उन्हे देखा ?

—नहीं तो, क्यों ? जरा आश्चर्य से मजूमदार की बहू ने पूछा था।

नटु घोष की बहू ने इस पर पूछा था, चलोगी किसी दिन ?

परन्तु मजूमदार की पत्नी का जाना नही हो पाया था। स्टेशन से बहुत दूर पड़ती थी कालोनी। लड़की को साथ लेकर नटु घोष की बहू एक दिन जा पहुँची थी। पहले दिन ही मुखर्जीगिन्नी ने उसे अपना बना लिया था।

बोली थीं, हम तो नये आये है दीदी, परदेश का मामला है, वह भी डरपोक स्वभाव के है आप लोगों का ही सहारा है—

—हम लोग भी तो नये ही है भाई, यहाँ कौन पुराना है।

उस दिन जो सूत्रपात हुआ तो दोनों में गाढ़ी मित्रता हो गई। और उसके बाद तो एक-एक करके सभी को अपना बना लिया था उन्होंने। जो छोकरे शुरू में दूर से ओठों ही ओठों में सीटी बजाते थे, वह भी उनका गुणगान करते अघाते नहीं थे।

जब-तब नेपाल आकर कहता, मुखर्जीगिन्नी, चाय पियूँगा।

वह कहती, क्यों रे, अब आता ही नही तू ?

नेपाल सफाई देता, कलकत्ता, हेडआफिस गया था—बृहस्पत को ही आया हूँ—

हाय राम, बृहस्पत को आया और आज शनिवार हो गया, इतने दिनों में एक बार भी नही आया ? बिल्कुल भूल गया मुझे !

और केवल नेपाल ही नहीं, अरुण, विमल, सभी का यही हाल था।

अचानक कभी अरुण भागता हुआ आता और कहता, थोड़ी सब्जी तो दो मुखर्जी पत्नी !

—केवल तरकारी ? खाली तरकारी का क्या करेगा रे ?

वह कहता, नेपाल ने खाना बनाया था, नमक झोंक दिया, खाई ही नहीं जा रही—जल्दी से थोड़ी तरकारी दे दो, नहीं तो आज भूखे ही रहना पड़ेगा—

दो बड़ी-बड़ी कटोरियों में दाल और आलू के साथ मागुर मछली की या कोई और तरकारी ले आतीं मुखर्जी पत्नी।

अरुण देखकर चकित रह जाता आँखें फैलाकर कहता, अरे बाप रे, इतनी सारी क्यों ले आईं ? हम दो ही तो हैं खाने वाले !

वह कहती, तो क्या हुआ, सब खाई जायेगी—

—सारी की सारी दे दोगी तो तुम लोग क्या खाओगे ? आफिस से आकर अभी मुखर्जी महाशय भी तो खायेंगे ?

—तो क्या हुआ, तू ले जा।

कभी-कभी ताश का खेल जमता। एक तरफ मुखर्जीगिन्नी और नेपाल होते और दूसरी तरफ अरुण और विमल। खेलते-खेलते झगड़ा हो जाता, पर फिर दोस्ती हो जाती। हँसी से कमरा गूँज उठता। मुखर्जीगिन्नी कहतीं, अबसे नेपाल को जोड़ीदार नहीं बनाऊँगी, अरुण कल से तू मेरा जोड़ीदार बनना—

नेपाल कहता, अरे वाह, मुझे कैसे पता चलता कि तुम्हारे पास पान का इक्का है ?

वह कहती, एक नम्बर का बेवकूफ है तू, जब मैं नहला फेंक कर चुप बैठ गई, तो तभी समझ जाना चाहिये था तुझे।

एक दिन खेल के बीच में ही मुखर्जी महाशय आ पहुँचे और उन्हें खेलते देखकर बोले, खेल रहे हो, अच्छा खेलो-खेलो—

फिर पत्नी की ओर देखकर कहा, अजी, तीन रुपये तो देना।

—क्यों, किसलिये चाहिये अब ? हाथ का पत्ता फेंककर नजरें उठा कर पूछा था उन्होंने !

—आफिस में सब के सब खिलाने को पीछे पड़े हैं—

—क्यों ? किसलिये खाना चाहते हैं।

—वह उस महीने पाँच रुपये तनख्वाह बढ़ी थी न, इसलिये मिठाई माँग रहे हैं सब के सब। मैंने कहा, घर से रुपये लाकर खिलाऊँगा—

मुखर्जीगिन्नी का चित्त तो खेल में रमा हुआ था, आँख उठाने की भी फुर्सत नहीं थी। बोली, चाबी लेकर बक्सा खोल लो—

ऐसे ही एक दिन खेलते-खेलते नेपाल बोला था, मुखर्जीगिन्नी, हम लोग मन्दिर के लिये चन्दा इकट्ठा कर देंगे, बताओ कितने रुपये इकट्ठा करने हैं?

चन्दा इकट्ठा करते समय थोड़ी गड़बड़ हुई थी, हर आदमी तो पाँच रुपये दे नहीं सकता था—विशेषकर वह, जिनका वेतन कम था। परन्तु ऐसे लोग गिनती के दो चार ही थे, जिन्होंने आपत्ति उठाई थी।

उन्होंने कहा था, मन्दिर बनाने से क्या फायदा? उससे तो नाटक क्यों न किया जाये, 'शाहजहाँ' तथा 'मेवाड़ पतन'—दो रात में दो नाटक। कलकत्ते से ड्रेसर व पेन्टर बुलाकर इकट्ठे किये रुपयों से नाटक किये जायें और अगर तब भी पैसे बच जायें, तो एक फीस्ट हो जाये—सबको भरपेट मास और पुलाव खिला दिया जाये—

इस पर नटु घोष ने कहा था, इन छोकरों की ऐसी-वैसी बातों में मैं नहीं पड़ूँगा, एक पैसा नहीं दूँगा मैं—

प्रेमलानी साहब ने पूछा था, क्यों? टेम्पल क्यों नही बनेगा?

लोगों ने जवाब दिया था, कुछ लोग अड़ गये हैं। कह रहे है मंदिर के बदले नाटक हो—

—नाटक? हाँ, यह भी क्या बुरा है, नाटक हो जाये।

परन्तु भूधर बाबू ने गुस्से से कहा था, मैं तो पहले ही जानता था कि ऐसा पुण्यकर्म नहीं होगा, बंगालियों में यूनिटी ही नही है। मैंने तो तभी कहा था—कैरेक्टर अच्छा न हो तो एकता-टेकटा सब हवा में उड़ जाती है, कोई जरूरत नहीं किसी चीज की, मेरे चन्दे के रुपये वापस कर दो—

ऐसा लगने लगा था, जैसे मन्दिर की बात धरी रह जायेगी। लेकिन खबर मिलते ही मुखर्जीगिन्नी घर से निकल पड़ी थीं।

छुट्टी का दिन था। नगेन सरकार घर बैठा हारमोनियम लिये स्वर साध रहा था। खिड़की खुली थी। घर के सामने जाकर पुकारा, देवर जी—

मुखर्जीगिन्नी को देखते ही नगेन सरकार ने गाना बंद करके जरा आश्चर्य से कहा था, आप?

तमतमाकर मुखर्जीगिन्नी ने पूछा था, कौन कह रहा है कि मन्दिर नहीं बनेगा ?

उनका चेहरा देखकर डर लगने लगा था नगेन सरकार को। झट से बोला था, कुछ लोग कह रहे हैं....

—कौन ? क्या नाम है उनका ?

—नाम....

—मैं कह रही हूँ बनेगा—कम्पनी रुपया दे या न दे, कोई अड़गा लगाये या न लगाये, मन्दिर तो बनेगा ही—

उनके सामने नगेन की बोलती बंद हो गई थी।

उन्होंने पूछा था, बस यह बता दो कि तुम मेरे साथ हो या नहीं ?

झट से नगेन ने कहा था, मैं तो तुम्हारे साथ हूँ मुखर्जीगिन्नी।

—तो फिर यह लो—

कहकर जल्दी से दाहिने हाथ से बाएँ हाथ की सोने की एक चूड़ी निकालकर उसकी हथेली पर जोर से पटक दी और बोली, कोई और दे या न दे, मैंने दे दिया। जरूरत पड़ेगी तो सारी चूड़ियाँ दे दूँगी।

उसके बाद उसी दिन दोनों मिलकर हर एक के घर गये थे और सबको समझाया था। बाद में नेपाल, अरुण व विमल भी साथ हो लिये थे।

तीनों ने कहा था, चिंता मत करो मुखर्जीगिन्नी, हम तुम्हारे सारे रुपये इकट्ठा कर देंगे—

उसी दिन से कालोनी में एक भूकम्प-सा आ गया था। नेपाल वगैरह ट्रेन के समय स्टेशन जाकर चंदा इकट्ठा करते। कोई एक पैसा देता, कोई दो पैसे और कोई-कोई रुपया दो रुपया—कोई नहीं भी देता। पहले दिन ही बीस रुपये बारह आने जमा हो गये थे तथा अगले दिन तेइस रुपये दो पैसे।

मुखर्जीगिन्नी की बात सुनकर प्रेमलानी साहब की बहू ने अपने हाथ से सोने की एक चूड़ी निकाल कर दे दी थी। नटु घोष की बहू सोने की चूड़ी तो नहीं दे पाई थी, क्योंकि कई लड़कियाँ थीं, जिनका विवाह करना था। पर तब भी उसने बीस रुपये दिये थे।

जेन्किन्स साहब ने पाँच सौ रुपये दिये थे।

हेड आफिस ने भी जमीन देने की अनुमति भेज दी थी। भैया को भी देना पड़ा था। मुखर्जी पत्नी स्वयं आकर कह गई थीं, डाक्टर साहब

अगले शनिवार की शाम को आपको आना पड़ेगा, उसी दिन नींव खोदी जायेगी—

आज इतने दिनों बाद विडन स्क्वेयर के सामने मुखर्जी महाशय के समक्ष खड़े वह सारी बातें याद आने लगी थीं। कालोनी के मैदान के किनारे अस्पताल के ठीक पीछे नींव पडी थी। कितनी भीड़ थी वहाँ उस दिन। कोई भी नहीं छूटा था। उधर बिजुरी, मनेन्द्रगढ, चिरमिरी से लोग आ गये थे। कन्ट्रैक्टर हुकुमसिंह स्वयं खड़े होकर काम करा रहा था।

मुखर्जी पत्नी घूम-घूमकर हरेक से कह रही थीं, आप लोगों के आने से हमारा उत्साह बढ गया—

नटु घोष ने सबसे उनका परिचय करा दिया था।

कहा था, यही हैं हमारी मुखर्जीगिन्नी, मिसेज मुखर्जी—एक तरह से इन्हीं के प्रयत्नों से यह मन्दिर बन रहा है—

मुखर्जीगिन्नी ने उस दिन सुबह से कुछ भी नहीं खाया-पिया था। सब कुछ निपटाकर लौटते-लौटते काफी रात हो गई थी।

नेपाल वगैरह भी साथ-साथ घर आये थे। चलते समय मुखर्जी पत्नी ने कहा था, कल सुबह आना तुम लोग—रुपये मेरे पास ही रहने दो, आज का हिसाब कापी में लिख लेना—

हिसाब में बहुत सख्ती बरती थी उन्होंने, एक पैसे का भी हिसाब नही मिलता तो घंटा निकाल देती थीं मिलाने में।

कहतीं, मन्दिर के रुपये हैं, एक-एक पैसे का हिसाब देना पड़ेगा, बाद में गोलमाल हुआ तो कौन जवाब देगा ?

रोज रात को जमीन पर दरी बिछा कर नगेन, नेपाल, अरुण व विमल के साथ हिसाब लिखने बैठती थी वह। हर व्यक्ति को जितने-जितने रुपये खर्च करने को दिये होते, हिसाब माँगती। अगर जरा भी गड़बड़ होती तो अपने साथ-साथ सबका दिमाग खराब कर देतीं।

हिसाब-किताब मिलाकर जब सोने जाती तो अनूपपुर की कालोनी में सोता पड़ गया होता, मुखर्जी महाशय की तो एक नींद भी पूरी हो जाती थी। और सुबह उनके उठने से पहले ही वह नहा धोकर चूल्हा जला चुकी होती थीं। जल्दी-जल्दी खाना-पीना निपटाकर मिस्त्रियों

का हिसाव करने के लिये हुकुमसिंह के पास चली जाती थीं। उन लोगों की मजदूरी का हिसाब-किताब वही रखता था।

पूरे जोर-शोर से काम चल रहा था। मन्दिर के साथ-साथ उसके सामने खंभों पर छत डाल कर बैठने के लिए भी जगह बन रही थी, जहाँ आवश्यकता पड़ने पर गीता पाठ, चंडी पाठ या कीर्त्तन भी हो सकता था।

रेलवे लाइन के कन्स्ट्रक्शन का काम था, आठ-दस साल चलना था। भविष्य में अनूपपुर के शहर बन जाने की संभावना थी, स्टेशन भी जंक्शन बनने वाला था। जिस प्रकार कोयले की खान के आस-पास कल-कारखाने बन जाते हैं, उसी प्रकार स्टेशन के आस-पास वस्ती बढ़ते-बढ़ते शहर बन जाता है। भविष्य में बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास से लोग आकर जब पूछेंगे कि यहाँ मन्दिर किसने बनवाया तो इसी कालोनी के लोगों का नाम लिया जायेगा। तब कोई बतायेगा कि किस तरह वहाँ के कुछ हिन्दुओं ने मिलकर पैसा इकट्ठा करके मन्दिर बनाया था।

प्रेमलानी साहब ने कहा था, मन्दिर एक तरह से मिसेज मुखर्जी के प्रयत्नों से ही बना है, तो फिर पत्थर भी उन्हीं के नाम का लगाया जाये—क्यों मिस्टर नटु घोष, आपकी क्या राय है?

नटु घोष उछल पड़े थे सुनकर। कहा था, अरे महाशय, इसमें भी भला दो राय हो सकती है! मेरी पत्नी तो मर ही जाती अगर वह न होतीं, घर से सैकड़ों मील दूर परदेश में विडोअर हो जाता मैं—मेरी लड़कियाँ तो उन्हें काकी कहने लगी हैं।

नगेन सरकार ने कहा था, उस मन्दिर की बात सबसे पहले उन्होंने ही मेरे सामने उठाई थी, सारा क्रेडिट उन्हीं का है—

कानों कान होती बात जब मुखर्जीगिन्नी के कान में पहुँची थी तो उन्होंने कहा था, छिः छिः, अगर ऐसी बात है तो आज से इस काम से मैं अलग हुई जाती हूँ।

नगेन सरकार ने संकुचित होकर कहा था, पर मुखर्जीगिन्नी आपने ही तो सब कुछ—

बात बीच में ही काट कर उन्होंने कहा था, देवर जी, तुम्हारा ख्याल है कि तुम लोगों की मदद के बिना मैं अकेली यह सब कुछ कर पाती?

नेपाल ने कहा था, अच्छा, तो फिर तुम मन्दिर कमेटी की सेक्रेटरी बन जाओ मुखर्जीगिन्नी—

—नहीं, मैं कुछ नहीं बनूँगी, बनना चाहती भी नहीं, मैं तो बस रोज भगवान को जल चढ़ाकर प्रणाम कर आया करूँगी। और तुम्ही बताओ मेरा नाम रखने से क्या बनेगा ! मैं ठहरी औरतजात—तुममें से ही एक प्रेसीडेंट और एक सेक्रेटरी बन जाओ—

अंत में मन्दिर बनकर तैयार हो गया था।

सबकी राय हुई थी कि जागरण के दिन एक मीटिंग भी बुला ली जाये।

सामान्य सा अनुष्ठान होने की बात थी, परन्तु होते-होते अच्छा बड़ा आयोजन हो गया था। हुकुमसिंह ने अपनी तरफ से शामियाना लगवा दिया था। रीवाँ के ठाकुर प्रेसीडेंट बनने को तैयार हो गये थे।

खाने का सामान मुखर्जी महाशय कटनी से लाये, वहीं से निमन्त्रण पत्र भी छपवाने का काम भी उन्हीं को सौंपा गया था। बेचारों ने जाने कितने चक्कर लगाये थे कटनी के।

नगेन सरकार ने सहानुभूति जताई थी, आपको बहुत परिश्रम करना पड़ रहा है मुखर्जी महाशय—

उनके बदले मुखर्जीगिन्नी ने जवाब दिया था, नहीं देवर जी, खरीद फरोख्त करने में उन्हें कोई तकलीफ नहीं होती—

फिर मुखर्जी महाशय की ओर देखकर बोली थीं, सब तो ले आये पर काँच के पन्द्रह गिलास और चाहिये थे—

मुखर्जी महाशय ने कहा था, पन्द्रह गिलास ? अच्छा, ले आता हूँ—

—कहाँ से लाओगे ?

—लोगों के घरों से दो-दो, चार-चार करके इकट्ठा करूँगा—

—हाँ, अब इसके अलावा चारा भी क्या है ? और देखो, कुछ ट्रे मिल जाएँ तो वह भी ले आना, हुकुमसिंह से मेरा नाम ले देना—उसके पास जरूर होंगी—

इस प्रकार सारा दिन मुखर्जी महाशय दौड़ते रहे थे। मुखर्जीगिन्नी भी दिन भर कामों में फँसी रही थी। और वही दोनों नहीं, बल्कि नगेन सरकार, नेपाल, अरुण, विमल आदि भी भागते-दौड़ते रहे थे।

अचानक नेपाल ने आकर याद दिलाया था, "मुखर्जीगिन्नी, फूलों की माला मँगानी तो याद ही नहीं रही—

अरुण ने कहा था, और कुछ प्लेट व ग्लास भी तो चाहिये—

मुखर्जीगिन्नी ने हँसकर कहा था, उसको चिंता मत करो, मुखर्जी महाशय से सब मँगवा लिया है—

शाम को जलसा आरम्भ होना था।

हम लोग जाने को तैयार हो रहे थे। भैया अस्पताल से जल्दी आ गये थे। मुखर्जीगिन्नी को वचन दे दिया था भैया ने।

उसी दिन अचानक सुबह की ट्रेन से भैया के मित्र प्रशांत दत्त आ गये थे। इन्श्योरेंस में काम करते थे, कभी दिल्ली, कभी बम्बई तो कभी कलकत्ता—जाना-आना लगा ही रहता था उनका। बीच-बीच में भैया के पास भी आ जाते थे और एक-दो दिन रह कर चले जाते थे।

दादा ने कहा था, अच्छा ही हुआ तुम आ गये, आज हमारे यहाँ एक जलसा है—

—कैसा जलसा ?

—तुम भी चलना, हमारी इस कालोनी के मन्दिर की प्रतिष्ठा होगी आज—जाना तो पड़ेगा ही—थोड़ी देर रुक कर वापस आ जायेंगे।

सचमुच एक विराट आयोजन था उस कालोनी के लिये। जाने कहाँ से नेपाल वगैरह पद्मफूल भी ले आये थे, धूप व अगरबत्तियाँ जल रही थीं। हुकुमसिंह सामने बैठा था, उसके पास ही जेन्किन्स साहब व प्रेमलानी साहब बैठे थे। सामने बेंचें बिछाकर मंच बना दिया गया था। रीवाँ के ठाकुर गले में माला पहने सभापति की कुर्सी पर बैठे थे। एक ओर औरतों के बैठने का स्थान था।

प्रशान्त बाबू को शायद यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। भैया से कहने लगे, दुर, यह सब क्या सुनना ! सब बेकार की बातें, चल उठ—

भैया ने हाथ पकड़कर बैठाते हुए कहा था, जरा देर बैठ न, परदेश में हूँ, ऐसे मामलों से अलग रहने पर बदनामी होती है—

प्रशान्त बाबू जरा अंग्रेज आदमी थे। कहने लगे, यह मन्दिर-वन्दिर के चक्कर में मैं नहीं पड़ता भाई, तेरी इच्छा है तू सुन, मैं तो चला—

नगेन सरकार ने भाषण दिया। ओवरसियर थे—लिख कर लाये थे।

बोले थे, आज हमारे इस मन्दिर की प्रतिष्ठा के पीछे जिस व्यक्ति ने अक्लांत परिश्रम तथा निष्ठा व निरालस भाव से कार्य किया सबसे पहले उन्हीं को भक्तिभाव से प्रणाम करता हूँ, वह न ...

संभव नहीं होता। उनका नाम है श्रीमती मुखर्जी। उन्हें आप सभी जानते हैं। वह हमारे कंस्ट्रक्शन के ड्राफ्ट्समैन मिस्टर मुखर्जी की पत्नी है।....

इसके बाद जेन्किन्स साहब की वक्तृता हुई।

उन्होंने कहा, क्रिश्चियनों के लिए जो महत्त्व चर्च का होता है, वही हिन्दुओं के लिये टेम्पल का होता है। टेम्पल उनके धर्म का अंग है—मिसेज मुखर्जी जब इस टेम्पल का प्रस्ताव लेकर मेरे पास आईं तो मैंने अंतःकरण से उसका समर्थन किया और हेड आफिस से भी डोनेशन दिलाने की व्यवस्था की—

प्रोग्राम की लिस्ट देखकर मुखर्जीगिन्नी ने कहा, देवर जी, अब तुम्हें गाना गाना है—

आश्चर्य से नगेन सरकार ने पूछा था, मैं गाना गाऊँगा? कह क्या रही हैं आप?

—बिल्कुल ठीक कह रही हूँ, तुम्हारे बाद शेफाली गायेगी और फिर दीपाली।

प्रोग्राम मुखर्जीगिन्नी ने ही तय किया था।

नेपाल से आकर पूछा, चाय का पानी चढ़ा दूँ?

—अभी नहीं, जरा देर बाद—मुखर्जीगिन्नी ने जवाब दिया था। फिर कहा था, हर प्लेट में दो समोसे और दो रसगुल्ले रखकर देना। प्रेसीडेंट के लिए तो दो राजभोग भी हैं—

अरुण ने पूछा था, तो प्रेसीडेंट को क्या अलग ले जाकर खिलाऊँ?

दूसरी तरफ जल्दी से मुँह बढ़ा कर नगेन सरकार फुसफुसाया, मुखर्जीगिन्नी, ठाकुर एक गिलास ठंडा पानी माँग रहे हैं, सोडा है, वह दे दूँ?

*उधर अरुण दौड़ा हुआ आया था, अब कौन गायेगा मुखर्जीगिन्नी?* दीपाली का गाना तो हो गया। भूधर बाबू आपको गाने के लिए कह रहे हैं, श्यामा संगीत।

उन्होंने आपत्ति जताते हुए कहा था, नहीं, नहीं, मुझे बिल्कुल फुर्सत नहीं है, शेफाली को बैठा दो फिर से। उसे बुला, मैं कह देती हूँ—

मुखर्जीगिन्नी ने उस दिन गरद की लाल किनारी की साड़ी पहनी थी। बालों का ढीला सा जूड़ा बना रखा था। माथे पर जरा बड़ी-

सी सिंदूर की बिंदी भी लगा रक्खी थी। बहुत अच्छी लग रही थीं उस दिन। आड़ से हर ओर उनकी नजर थी। कहीं जरा भी गड़बड़ होने पर तुरत उनके पास खबर पहुँच जाती थी। कोई अव्यवस्था नहीं थी—प्रत्येक को अलग-अलग काम सौंप दिया था। सारा कार्यक्रम निर्विघ्न चल रहा था।

इतने में भूधर बाबू स्वयं अन्दर पहुँच गये थे। उन्होंने भी टसर के कपड़े पहन रखे थे। सर की चोटी को जरा फुला कर स्पष्ट कर रक्खा था।

अन्दर पहुँचकर बोले थे, कहाँ है मेरी माँ, कहाँ हो माँ जननी ?

एक जने ने दौड़कर मुखर्जीगिन्नी को खबर दी।

जल्दी से सामने आ पहुँची थीं वह—

भूधर बाबू तब तक एक सुर में माँ, ओ माँ, ओ माँ जननी, पुकारे जा रहे थे।

मुखर्जीगिन्नी ने झट से झुककर चरणरज ली और बोली थीं, मुझे अपराधी मत बनाइये बड़े बाबू—

भूधर बाबू ने कहा था, नहीं माँ, तुम क्या सामान्य औरत हो ! तुम तो महाशक्ति हो, कोई चाहे कुछ भी कहे लेकिन मेरे आँख कानों को धोखा थोड़े ही दे सकता है कोई—

लज्जा से गड़ गई थीं मुखर्जीगिन्नी और कहा था, छिः छिः, मैंने जाने कितने अपराध किये है—अब और लज्जित मत करिये आप मुझे—

परन्तु भूधर बाबू इस पर भी रुके नहीं थे, कहते ही रहे—नहीं नहो, मैं संतान हूँ तुम्हारी, अबोध संतान माँ ! माँ होकर तुम संतान का एक अनुरोध नहीं रक्खोगी ?

—क्या बात है बाबा, बताइये क्या करना है ?

—एक गाना सुना दो आज माँ। अब मना मत करना माँ, बोलो गाओगी ना ?

—पर इधर कितने काम है बाबा, मैं गाने चली गई तो इधर कौन संभालेगा ?

—जो सँभालने वाले हैं वही सँभालेंगे माँ, तुम और मै तो निमित्त-मात्र है....

आगे बोले, और फिर भगवान के स्थान पर अब तक उन लोगों ने जितने भी गाने गाये, वह भी कोई गाने थे ? एक में भी तो भगवान का नाम नहीं था !

पर उस तरह का गाना क्या सबको अच्छा लगेगा !

—क्यों भगवान का नाम अच्छा नहीं लगेगा ? मेरी माँ होकर तुम यह क्या कह रही हो माँ ?

इस पर मुखर्जीगिन्नी ने पूछा था, अच्छा बताइये कौन-सा गाऊँ ?

खुश होकर भूधर बाबू बोले थे, बस वही सुना दो 'श्यामा माँ कि आमार कालो'।

हार कर वह बोली थी, अच्छा बाबा, आप बैठिये जाकर मैं गाती हूँ—

भूधर बाबू के जाने के बाद नेपाल, नगेन आदि की तरह देख कर उन्होंने कहा था, तुम लोग जरा सँभालना इधर। वह जिद कर रहे हैं, गाना ही पड़ेगा—

सब के सब उछल पड़े थे ! कहने लगे थे, सचमुच आप गायेंगी मुखर्जीगिन्नी ?

—नहीं गाऊँगी तो कैसे चलेगा बताओ ? पितृतुल्य आदमी है वह, उनकी बात कैसे टाल सकती हूँ ?

आज भी याद है कि उनके गाने के लिए तैयार हो जाने पर कैसे लोगों में उत्साह की लहर दौड़ गई थी। जब नगेन सरकार ने उनके गाने की घोषणा की तो जोर-जोर से तालियाँ बज उठी थीं।

नगेन सरकार ने कहा था, अब हमारे इस मन्दिर की प्राण व प्रेरणा देने वाली श्रीमती मुखर्जी आप लोगों को एक श्यामा संगीत सुनाएँगी—

प्रशान्त बाबू ने पूछा था, यह कौन हैं रे ?

भैया ने कहा था, हमारे यहाँ के ड्राफ्ट्समैन की पत्नी है—सुना है बहुत अच्छा गाती हैं—

—यह मन्दिर शायद इन्हीं ने बनवाया है ?

—हाँ, केवल मन्दिर नहीं, हर काम में उनका हाथ होता है, किसी की मुसीबत में सबसे आगे रहती है। बहुत मिलनसार हैं, सभी बहुत मानते हैं उन्हें—

तभी पर्दा खुल गया। सामने खड़ी मिसेज मुखर्जी ने झुककर सबको

प्रणाम किया। वगल में तवले पर नेपाल वैठा था। उन्होंने बिना किसी की ओर देखे, आँखें बंद करके गाना शुरू कर दिया—

'श्यामा माँ कि आमार कालो'—

सभा में निस्तब्धता छा गई। ऐसी निस्तब्धता कि सुई गिरने की आवाज भी सुनाई दे जाये—

प्रशान्त वाबू एकदम से बीच में बोल पड़े थे, अरे, यह तो बनारसी है—

भावावेग में भूधर बाबू चिल्ला उठे थे, माँ-माँ-माँ—

वहाँ वैठे सभी लोग तन्मय हो गये थे। जैसा मधुर कंठ था, वैसा ही मधुर स्वर भक्ति से ओत-प्रोत—

भूधर बाबू ने फिर कहा था, आहा''' यह है गाना, जिसे वास्तव मे गाना कहा जा सकता है।

बगल में ही नटु घोप बैठे थे। वह भी कैसे पीछे रहते, उन्होंने भी मन्तव्य प्रकट किया था, मन में विशुद्ध भक्ति न होने पर कंठ से ऐसे सुर नहीं निकलते बड़े बाबू!

भूधर बाबू ने कहा था, अरे विशुद्ध कैरेक्टर भी तो चाहिये—मैं क्या यों ही 'माँ' कहकर पुकारता हूँ।

प्रशान्त बाबू फिर बोले थे, अरे यह हो ही नही सकता कि यह बनारसी न हो—

भैया ने उन्हे रोका था, अरे, तू चुप रह न, गाना बहुत अच्छा लग रहा है—

—अरे बनारसी यहाँ श्यामा संगीत गा रही है, कितनी ठुमरियाँ सुनी हैं इसकी। ठुमरी भी अच्छी गाती थी यह—

—कौन बनारसी?

—मैं तो भाई एक ही बनारसी को जानता हूँ, सारी बनारसियों को भला कैसे पहचान सकता हूँ!

भैया ने कहा था, यह तो हमारे ड्राफ्टसमैन मुखर्जी की पत्नी है, हम सब उसे मुखर्जीगिन्नी कहकर बुलाते हैं!

बायें हाथ की हथेली पर मुक्का मारते हुए उत्तेजित स्वर में प्रशान्त बाबू ने कहा था, देख, मैं शर्त लगाने को तैयार हूँ कि यह बनारसी है, दुर्गाचरण मित्तिर स्ट्रीट के तेरह नम्बर कमरे की औरत—

—तेरा दिमाग तो सही है? क्या अंट-शंट बक रहा है?

मुँह घुमाकर भूधर बाबू बोले थे, जरा चुप रहिये न—

आगे से किसी और ने भी कहा था, चुप रहिये न जरा—बड़ा शोरगुल हो रहा है—

इस पर चुप रह गये थे प्रशान्त बाबू।

परन्तु गाना समाप्त होते ही उठ कर चिल्लाये थे, एक ठुमरी सुनूँगा—

देखा, यह सुनते ही मुखर्जीगिन्नी सन्न सी रह गई थी, चेहरा लाल हो गया था। दूसरे ही क्षण उठकर अन्दर चली गई थी और पर्दा खींच दिया था।

बाहर हल्ला-गुल्ला शुरू हो गया था।

भूधर बाबू कह रहे थे, क्या भजन सुनाया तुमने माँ, आहा, चित्त प्रसन्न हो गया—

नटु घोष कहने लगे, मन में विशुद्ध भक्ति है न, इसलिए भावाभिभूत होकर गाया है—एक और सुनने का दिल हो रहा है—अरे, उनसे एक और सुनाने को कहो ना।

एक जना अन्दर चला गया था।

पर अन्दर भी उस वक्त नेपाल, अरुण, विमल आदि इसी बात को लेकर मुखर्जीगिन्नी को घेरे खड़े थे। एक और गाने का अनुरोध कर रहे थे।

उन्होंने कहा था, मेरा सर दर्द से फटा जा रहा है रे, अब और नहीं टिका जा रहा।

अचानक किसी ने पुकारा था, बनारसी!

*सभी एकदम से पीछे घूमकर पुकारने वाले को देखने लगे थे।*

तब तक प्रशान्त बाबू सामने पहुँच कर हँसकर बोले थे, अरे वाह, यहाँ कब आई बनारसी! कृपालनी साहब तो फिर एक बार तुम्हारे यहाँ जाने की जिद कर रहे थे। गये तो घरवाली ने कहा, बनारसी अब नहीं रहती यहाँ, तो यहाँ चली आईं तुम? हमें बताया भी नहीं?

मुखर्जीगिन्नी जैसे कुछ भी नहीं सुन पा रही थीं, सहनशक्ति जैसे जवाब दे गई थी।

नेपाल ने जरा तल्खी से पूछा था, कौन हैं आप? कहाँ से आये हैं?

प्रशान्त बाबू ने कहा था, मैं बनारसी से बात कर रहा हूँ, हम एक दूसरे को जानते हैं न!

इस पर अरुण ने कहा था, उनकी तबियत ठीक है, बाद मे बात करियेगा आप—

मुखर्जीगिन्नी ने कहा था, एक ग्लास पानी दे तो—

आगे कुछ कहे बिना प्रशान्त बाबू के हँसते हुए बाहर चले आने पर नेपाल ने पूछा था, वह सज्जन कौन हैं मुखर्जीगिन्नी ? तुम्हारी जान-पहचान के हैं क्या ?

प्रश्न का कोई जवाब न देकर उन्होंने कहा था, जरा मुखर्जी महाशय को बुला दे, घर की चावी उनके पास है, मैं घर जाऊँगी—

उनके चले जाने की बात सुनकर सबका दिल बैठ गया था। और दिल बैठने की बात भी थी। उनके बिना तो सारा आयोजन ही नष्ट हो जाता। उनके बिना वहाँ का काम सँभालने वाला कोई भी तो नही था। अभी तो ठाकुर साहब का भाषण होना था, फिर सबको खिलाना-पिलाना था। उनके न रहने पर न जाने कौन-सी कमी रह जाये।

बाहर भी अच्छा खासा हो हुल्लड़ शुरू हो गया था।

नेपाल ने पूछा था, अब किसका भाषण होगा मुखर्जीगिन्नी ?

इस पर वह बोली थीं, मैं तो जा रही हूँ भाई, तुम लोगों से जो कुछ हो सके कर लेना—

तब तक मुखर्जी महाशय अंदर पहुँच गये थे। मुखर्जीगिन्नी ने कहा चलो—

मुखर्जी बेचारे हाँ में हाँ मिलाने वाले आदमी थे। उन्होंने भी तुरत कह दिया था, चलो—

बाहर बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के बाद भूधर बाबू चिल्लाये थे, अरे ओ छोकरे, मुखर्जीगिन्नी से एक और श्यामा सगीत सुनाने को कहो ना—

नटु घोप ने कहा, सुना है, वह चली गईं—

—क्यों ? चली क्यों गईं ?

किसी ने कहा था, वह मुखर्जीगिन्नी नही हैं, वह बनारसी हैं—

दूसरे ने पूछा था, बनारसी—माने ?

—बनारसी माने बनारसी देवी !

—क्या कह रहे है आप ?

—जी ठीक ही कह रहा हूँ !

प्रशान्त बाबू ने पीछे से जरा उच्च स्वर में कहा था, अरे म[illegible]

दुर्गाचरण मित्तिर स्ट्रीट गये है आप कभी ? गये होते तो बनारसी को पहचान जाते। उसके कमरे में एक बार भी गये होते तो उसका गाना नहीं भूल पाते। भला मुझे क्या पता था कि यहाँ कोयले के इस प्रदेश में आकर वह मुखर्जीगिन्नी बन गई है ?

भैया ने पूछा था, पर तूने बनारसी को कैसे पहचाना ?

सिगरेट जलाकर प्रशान्त बाबू ने कहा था, मुझे कौन धोखा दे सकता है। मैं इन्श्योरेंस का दलाल हूँ, कितने ग्राहकों को चराया है, उसने भले ही गरद की साड़ी पहनकर माँग में सिंदूर भर लिया हो, लेकिन मेरी आँखें धोखा नहीं खा सकतीं—

भैया ने पूछा था, तू क्या उसके यहाँ गया था ?

—अरे मुझे तो जाने कहाँ-कहाँ जाना पड़ता है ग्राहकों को खुश करने के लिये ! कोई होटल में खाना चाहता है तो किसी को पार्टी देनी पड़ती है। किसी को शराब पिलानी पड़ती है और खुद को भी पीने का नाटक करना पड़ता है। किसी-किसी को ऐसी जगह भी ले जाना पड़ता है। 'केस' लेने के लिये जैसा ग्राहक हो, उसकी वैसी ही खातिर करनी पड़ती है—

भूधर बाबू उत्तेजित होकर बीच में ही बोल पड़े थे, ठहरिये महाशय, सती लक्ष्मी के लिये ऐसे-वैसे शब्द मुँह से मत निकालिये, जीभ गलकर गिर जायेगी आपकी—

नटु घोष ने पूछा था, डाक्टर बाबू, ये क्या आपके मित्र है ?

भूधर बाबू फिर शुरू हो गये थे, आप क्या मुखर्जीगिन्नी को हमसे ज्यादा जानते है ? पता है, मैं आदमी का मुँह देखकर कैरेक्टर बता सकता हूँ ?

प्रशान्त बाबू ने इस पर एकदम से उठ कर कहा था, तो चलिये न, आपके सामने ही कहलवा देता हूँ कि वह मुखर्जीगिन्नी है या बनारसी—

—चलिये, चलिये। मैं भी देखता हूँ कि उनके मुँह की तरफ देख कर आपको यह कहने का कैसे साहस होता है।

—चलिये ! अभी आमना-सामना करा देता हूँ।

दोनों खड़े होकर चलने को तैयार हो गये थे।

नटु घोष ने भी उठते हुए कहा था, चलिये, डाक्टर बाबू, चलकर देख ही लिया जाये। कौन जाने अब क्या होगा, मैंने तो उसके हाथ का

पका भी खाया है, बीवी-बच्चों ने भी खाया है। हे राम! अब क्या होगा ?

भूधर बाबू ने कहा था, मैंने भी तो खाया है महाशय, उन्हीं के घर बैठकर इन्हीं की बनाई सत्यनारायण की सिन्नी खायी है। और आप कह रहे हैं कि मैं आदमी नहीं पहचानता ? जानते हैं, मैंने आज तक मुखर्जीगिन्नी को छोड़कर कभी किसी का छुआ नहीं खाया ?

प्रशान्त बाबू ने कहा था, यह सब कहने सुनने से क्या फायदा महाशय, हाथ कंगन को आरसी क्या ?—चलकर खुद ही देख लीजिये—

तब तक बात औरतों के बीच भी पहुँच गई थी।

नटु घोष की बहू गाल पर उँगली रखकर बोली थी, हाय राम, यह कैसी सर्वनाशी बात सुनाई दे रही है, मेरे तो हाथ-पाँव ठंडे हुए जा रहे हैं।

साहब बहू बोली थी, यह भी कभी हो सकता है दीदी ?

स्टेशन-मास्टर अम्बिका मजूमदार की बहू ने कहा था, हे भगवान, कैसे कलंक की बात है, हम लोगों का तो जात जनम सब चला गया।

सब अन्दर की ओर चल पड़े तो मैं भी साथ हो लिया था। लेकिन मुखर्जीगिन्नी वहाँ नहीं थीं। मुखर्जी महाशय के साथ घर चली गई थीं वह। सर दर्द के कारण ठहर नहीं पाई थीं।

प्रशान्त बाबू ने कहा था, चलिये, फिर घर ही चलें।

भूधर बाबू तुरन्त तैयार हो गये थे।

परन्तु नटु घोष बोले थे, रहने दीजिये, अब इतनी रात को जाना ठीक नहीं है। कल सुबह इसका फैसला कर लिया जायेगा, आप भी अभी नहीं जा रहे, और हम भी यहीं हैं—

प्रेमलानी साहब ने समर्थन करते हुए कहा था, यही ठीक है—

उस रात वह बात वहीं रह गई थी। सब अपने-अपने घर चले गये थे। सभा फिर जम नहीं पाई थी—बीच में ही भंग हो गई थी।

सुबह-सुबह औरों के आने से पहले ही भूधर बाबू हमारे घर आ पहुँचे थे। कहने लगे, सारी रात नींद नहीं आई मुझे—जिसे माँ कह कर पुकारा हो उसके ऐसा होने की कल्पना ही नहीं की जा सकती महाशय—चलिये, जल्दी चलिये—

तब तक और लोग भी आ पहुँचे थे। नटु घोष कहने लगे,

पत्नी तो रात भर रोती रही, इतने दिनों तक हाँडी एक करती रहीं, बच्चे तो उसे काकी माँ कहते नही अघाते थे—

कालोनी के दक्षिण की ओर ऊँचे टीले पर तेरह नम्बर का मकान था। बाहर बगीचा था, फूल खिले हुए थे। बड़ी साध से बगीचा लगाया था मुखर्जीगिन्नी ने। लेकिन पास पहुँचते ही दरवाजे पर ताला लटकता दिखाई दिया था। कहीं कोई नहीं था। तभी उनकी नौकरानी आती दिखाई दी थी।

नेपाल ने उससे पूछा था, ए लक्ष्मी, तेरी मालकिन कहाँ हैं?

—वह तो कल रात की ट्रेन से चली गईं।

—चली गईं? कहाँ? एक साथ सबने पूछा था।

—यह तो नही मालूम बाबू।

—माल असबाब ले गई।

—नहीं, कुछ भी नहीं ले गई, खाली हाथ गई है—

बस यही सारी बात खत्म हो गई थी। उसके बाद वह दोनों कभी किसी को नही मिले थे। वह लोग कभी लौटे ही नहीं। कालोनी कुछ साल और रही वहाँ। चिरमिरी तक रेल लाइन पहुँचने में चार-पाँच साल लग गये थे। काम खत्म होने पर कालोनी उठ गई थी। आफिस बन्द हो जाने से सब फिर बेकार हो गये थे। ताला तोड़कर मुखर्जी का सामान आफिस में जमा करा दिया गया था। फिर उस सामान का क्या हुआ पता नहीं।

•

आज इतने दिन बाद मुखर्जी महाशय से साक्षात हो जायेगा, इसकी कल्पना भी नहीं थी।

पूछा, मुखर्जीगिन्नी कहाँ है?

यह सुनते ही मुखर्जी महाशय का चेहरा फक्क पड़ गया।

तिरस्कृत स्वर में मैंने कहा, आखिर आपने अनूपपुर के सारे लोगों की जात भ्रष्ट कर दी मुखर्जी महाशय?

उनकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

मैंने कहा, शादी करने को आपको कोई और लड़की नही मिली? भद्र घर के लड़के होकर आपने…

मुखर्जी महाशय मेरा हाथ छुड़ाकर जाने का प्रयत्न करने लगे। मैंने और कसकर पकड़ लिया।

कहा, बताइये, आपको बताना ही पड़ेगा कि आपने एक बाजारू औरत से शादी क्यों की थी ? कैसे परिचय हुआ था उससे आपका ?

असहाय, करुण नेत्रों से वह मेरी ओर देखने लगे।

फिर बोले, विश्वास करो भैया, बनारसी के साथ मेरी छुटपन से ही दोस्ती थी, जब हम दो तीन साल के थे। हम लोग एक ही गांव के थे ना—बेलडांगा के—

इतना कहते-कहते ही हाँफ उठे थे वह।

जरा दम लेकर बोले, मैं जानता हूँ कि तुम लोग मेरा विश्वास नही करोगे, लेकिन बारह वर्ष की उम्र तक मैं यही जानता था कि मेरा विवाह उसी से होगा, बनारसी मुझे बहुत चाहती थी ना ! और सच तो यह है कि मैं भी उसे चाहता था।

मैंने पूछा, फिर ?

—फिर जाने क्या हुआ कि वह लोग किसी वजह से एक बार अपने मामा के साथ कलकत्ता गंगा स्नान के लिये गये,तो फिर लौटे ही नहीं। उसकी गरीब विधवा माँ थी, मकान भी टूटा-फूटा था—

—उसके बाद ?

मुखर्जी महाशय ने गहरा श्वास लेकर कहा, अब तुम बड़े हो गये हो, इसलिये बताने में शर्म नहीं है, [illegible] साल बाद अचानक वह मिल गई थी—

—कहाँ ?

—वही, अपने कमरे में, [illegible] के एक मकान में रहती थी वह। सुना था बहुत अच्छा गाती है, इसलिये सुनने चला गया था। पहले मैंने ही पहचाना था उसे। कहा था, तुम बनारसी हो ना ?

यह कहकर वह [illegible] से आँखें पोंछने लगे।

फिर बोले, उसने उसी दिन [illegible] बुलाकर मुझसे शादी कर [illegible]

—फिर ?

—इस [illegible] सोच रहा था, [illegible] ही, पर अगर [illegible] हो जाता [illegible]

इतनी देर [illegible]

मुखर्जीगिन्नी कहाँ है अब ?

खोये-खोये स्वर में मुखर्जी महाशय कहने लगे, फिर भैया उसके बाद जहाँ भी नौकरी पर गया, एक न एक दिन पकड़ा गया—कहीं भी शांति नहीं मिली।

मैंने फिर पूछा, मुखर्जीगिन्नी अब कहाँ है ?

—मर गई।

मेरी बोलती बंद हो गई।

मुखर्जी महाशय कहने लगे, अंतिम जीवन बड़ा कष्ट मे बीता उसका, मन ही मन दग्ध होती रही, तिल-तिल मरती रही और बस छुपती रही, आखिरी दिनों में तो जुबान ही बंद हो गई थी।

•

## नायक-नायिका

चौड़ी सड़क थी, जिसके एक ओर टीन की छत का एक कच्चा मकान था। दरवाजे के ऊपर की दीवाल पर एक छोटा सा साइनबोर्ड लटक रहा था, जिस पर लिखा था—'द ग्रेट होमियो हाल।' लेकिन अन्दर घुसने पर पता लगता था कि कमरे में पांच आदमियों से ज्यादा नहीं समा सकते थे।

सड़क पर चलते यात्रियों की नजर जैसे ही उस साइनबोर्ड पर पड़ती, हँस देते।

आपस में एक-दूसरे से कहते, देखो-देखो—'ग्रेट होमियो हाल' देखो।

अलकतरा पुता एक छोटा नीचा दरवाजा था। अन्दर जाने के लिये सर झुकाना पड़ता। उसे देखकर ऐसा लगता था जैसे बारिश की तेज बौछार पड़ते ही कमरा पूरा का पूरा ढह जायेगा, अस्तित्व खत्म हो जायेगा उसका। और अगर कोई जरा अंदर झांककर देख लेता तो हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाता। कोई रोगी होता नहीं—बस एक कम उम्र का आदमी सड़क पर नजरें गड़ाये बैठा दिखाई देता, शायद रोगी की आशा में बैठा रहता था।

और दवाखाने के दूसरी तरफ?

दूसरी तरफ एक बहुत बड़ा मकान था। लाल ईंटों का खूबसूरत मकान। सदर दरवाजे पर बन्दूकधारी दरबान पहरा देता होता। मकान के इस किनारे से उस किनारे तक सारे खिड़की दरवाजे सारे दिन बन्द रहते। नया मकान था। अंततः रंग रोगन तो नया ही था। हमेशा चमकता रहता था। बीच-बीच में एक बड़ी सी मोटर सामने आकर खड़ी हो जाती थी। मोटर के रुकते ही दरवाजे तक दोनों तरफ पर्दा टांग दिया जाता। पता ही नहीं चलता कि कौन उतरता-चढ़ता। बस 'द ग्रेट होमियो हॉल' का डाक्टर तिनकड़िभंज मुँह बाये उस ओर देखता रहता।

असल में चौड़ी सड़क के उस बड़े मकान को लेकर ही यह मेरी कहानी है।

निर्मल लाहिड़ी बोले, कहाँ महाशय, पिछली पूजा पर ही तो देव-घर गया था मैं, आपके उस बड़े मकान को देखने की तो याद पड़ती है—पर वह 'द ग्रेट होमियो हाल' में दिखाई नहीं दिया था—सड़क के दोनों ओर दो बड़े मकान थे।

मैंने कहा, यह कोई आज की बात थोड़े ही है। मेरी उम्र उस समय ज्यादा से ज्यादा बारह-तेरह की होगी जब पिताजी के साथ गया था, मैंने ही 'ग्रेट होमियो हॉल' नहीं देखा था उस समय, तो आपको कैसे दिखाई देता ? यह सब तो मेरी सुनी हुई बातें है ! न वह टीन की छत का कच्चा दवाखाना देखा था और न दरबान वाला मकान—तब तक वह मकान टूट फूट कर गिरने लगा था—। और सच तो यह है कि वह डाक्टर तिनकड़िभंज भी पहले वाले तिनकड़िभंज नहीं रहे थे। उनका चेहरा ही बदल गया था।

कुछ मित्र बैठे शाम के समय गप्पें मार रहे थे।

निर्मल लाहिड़ी बोले, बचपन में बस दगाबाजी ही करता रहा भाई, इसलिये जीवन में कुछ भी नहीं कर पाया—अच्छी तरह अड्डेबाजी ही करता तो कुछ काम बनता, कम से कम अड्डेबाज के नाम से तो मशहूर होता, अब न घर का रहा और न घाट का—

चित्त सरकार बोले, आदमी भाग में जैसा लिखाकर लाता है वैसा ही तो होगा। अब देखो न, भाग्य में वारह लड़कों का बाप बनना लिखा था, तो हुआ—

समीर डे बोले, भाग्य-वाग्य सब बेकार की बातें है, असली चीज है पुरुषत्व। पुरुषत्व ही सब कुछ है—आइन्सटाइन ने कहा है—

चित्त सरकार बीच में ही बोले, अपना आइन्सटाइन अपने पास रक्खो, तुम्हरा आइन्स्टाइन इतना बड़ा युद्ध रोक पाया था ?

समीर डे बोले, यह तुम्हारे जैसे फैटेलिस्टों की वजह से ही तो सारी परेशानी है, नहीं तो दो सौ साल पहले ही देश स्वाधीन हो गया होता—

चित्त सरकार बोले, अभी हुआ ही क्या है भाई, नई-नई शादी हुई है, पत्नी अभी भी नई है, खून मे गरमी है तुम्हारे, इसलिये पुरुषत्व पुरुषत्व चिल्ला रहे हो !

निर्मल लाहिड़ी बोले, भाग्यचक्र भी बस एक ही चक्र है ! भाग्यचक्र

की चरखी में घूमते-घूमते हाड़-मांस दग्ध हो गये, इसलिये तो बम भागा फिरता हूँ—

चित्त सरकार बोले, वह नहीं कर पायेंगे दादा, नहीं तो उसे भाग्य कहते ही क्यों !

समीर डे बोले, तो फिर बताइये कि दलाई लामा जो आराम से राज कर रहा था—अचानक सब छोड़कर इंडिया भागकर आना पड़ा, यह भी भाग्य है···?

चित्त सरकार बोले, यही तो मजे की बात है भाई, जो भाग्य राजा बनाता है, वही भाग्य एक दिन भिखारी बनाकर छोड़ देता है—नही तो क्या ऋषि मुनी ऐसे ही कह गये है—भाग्यम् फलति सर्वत्र—

समीर डे क्रुद्ध हो गये थे।

बोले, तो फिर मैं तो कहूँगा इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स आप लोग खाक समझते हैं—

मैंने बात को मोड़ देने के लिये कहा, बहस छोड़िये, चलिये मैं एक कहानी सुनाता हूँ—

निर्मल लाहिड़ी बोले, चलिये वही सुनाइये। ओह अब तक जम गया होता—

चित्त सरकार बोले, खासी अच्छी अड्डेबाजी चल रही थी, समीर ने सब मिट्टी में मिला दिया—

समीर डे शायद कुछ कहने जा रहे थे। मैंने रोकते हुए कहा, तुम रुको समीर—बहस से बहुत डरता हूँ मैं। दुनिया में तर्क से जीतने वाला अब तक तो कोई दिखाई नही दिया मुझे। बहस खत्म करने के लिये ही मैंने कहानी शुरू की थी। क्योंकि कहानी बहस की मृत्यु होती है।

मेरे पिता विख्यात कविराज थे। उन दिनों दक्षिण कलकत्ते में मेरे पिता जैसा नाम और किसका था, मैं नहीं जानता। राजा-रजवाड़ों, ऐटर्नी बैरिस्टर से शुरू करके आफिसों के क्लर्क तक न जाने कितने उनके क्लायंट थे। बीच-बीच में काशी, पटना, पुरी व आसाम के चाय बगीचों से भी बुलावा आ जाता था। स्कूल की छुट्टी होती थी, तो मैं भी उनके साथ जाता था। इस तरह बहुत-सी जगह घूमा था मैं।

तो उस बार देवघर से बुलावा आया।

कलकत्ते के बहुत बड़े बैरिस्टर किरण चौधरी आबहवा बदलने देवघर गये थे। वह पिताजी के पुराने पेशेण्ट थे। सुबह-सुबह तार आया

—किरण चौधरी की हालत खराब है, तार मिलते ही कविराज देवघर चले आयें।

मेरे स्कूल की छुट्टियां चल रही थीं।

कुछ दवाइयां तैयार करवाकर पिताजी मुझे लेकर देवघर चल दिये।

कुछ दिन बहुत अच्छे बीते वहां। पिताजी तो शुरू के कई दिन रोगी को लेकर ही व्यस्त रहे। साहबी पद्धति के अनुयायी थे किरण चौधरी। देवघर में भी उनका रंग-ढंग बदला नहीं था। सुबह से रात तक ब्रेकफास्ट, लंच और डिनर की मार से जब आत्माराम पिंजड़ा तोड़ कर निकल भागने का उपक्रम कर रहा था उस समय किरण चौधरी ने अपना रास्ता जरा बदला।

पिताजी ने कहा था, अब मैं चलता हूं चौधरी साहब, अब चिन्ता की कोई बात नही है—

अनुरोध करते हुए चौधरी साहब बोले थे, एक सप्ताह और रुक जाइये कविराजजी। मैं पूरी तरह ठीक हो जाऊं तो चले जाइयेगा आप—

पिताजी का कोई नुकसान तो हो नहीं रहा था। हफ्ते में हजार रुपये फीस के मिलते थे और रहने खाने के अलावा दवा के दाम अलग से। और फिर कलकत्ते से देवघर आने-जाने का फर्स्ट क्लास का किराया।

परन्तु इस पर भी पिताजी ने कहा था, ठहर तो सकता हूँ, लेकिन आज से मेरे खाने-पीने की दूसरी व्यवस्था करनी पड़ेगी, आपका वह डिनर लंच अब नहीं खाया जायेगा—

चौधरी साहब एकदम मान गये थे। कहा था, आप बताइये क्या खायेंगे? वही बन जायेगा—

—हम लोगों के लिए उस स्टू, सूप के बदले शुक्तुनि, मोचार घंट, झिंगेपोस्त, थोड़-हेंच्कि आदि बनवाना पड़ेगा आज से—

—ठीक है, यही बना करेगा—किरण चौधरी ने कहा था।

बाहर से पक्के अँग्रेज होते हुए भी अन्तर में बंगाली ही थे वह। शायद पत्नी के पल्ले पड़कर ही साहबीपने के पक्षपाती बन गये थे। नहीं तो पक्के साहब होकर बीमारी के समय एलोपैथ डाक्टर को न बुलाकर कविराज को क्यों बुलाते?

खैर, दूसरे दिन से खाने की वही व्यवस्था हो गई। हम लोग एक हफ्ते और रहे देवघर। हम दोनों बाप-बेटे सुबह घूमने निकलते, दोपहर को खा-पीकर थोड़ा विश्राम करते और शाम को फिर घूमने निकलते। चौधरी साहब भी धीरे-धीरे ठीक होते जा रहे थे।

आने के पहले दिन अचानक एक घटना घटी। वही घटना मेरी कहानी का विषयवस्तु है।

तुम लोग अब तक पुरुषत्व और भाग्य के बारे में तर्क-वितर्क कर रहे थे और मैं चुप बैठा सुन रहा था। किताबों में तो कोई सच बात नहीं लिखता। किताब पढ़ने पर वास्तविक मतामत मिलना तो दूर रहा बल्कि बात और उलझ जाती है। सुना है कि नेपोलियन स्वयं भगवान की सत्ता को नही मानता था, परन्तु यह चाहता था कि उसकी प्रजा भगवान को माने—इसी में उसे सुविधा थी। क्योंकि दुर्भिक्ष अगर पड़ जाये तो भगवान को मानने वाली प्रजा सारा दोष भगवान को ही देगी, राजा को नहीं। और अगर तुम पूछो कि भगवान और भाग्य दोनों क्या एक ही चीज हैं। तो मैं कहूँगा, भले ही एक न हों, पर अलग भी नहीं हैं, दोनों एक-दूसरे से जुड़े हैं।

निर्मल लाहिड़ो बोले, यह फिर तत्त्व को लेकर क्यों भाषण देने लगे—कहानी सुनाइये ना—

मैंने कहा, कहानी सुना रहा हूँ; परन्तु तत्त्व की थोड़ी मीमांसा किये बिना तुम लोग कहानी को कपोल-कल्पित कहकर उड़ा दोगे और फिर कहानी में तत्त्व का पंच मिलाये बिना तुम उसे विश्वासयोग्य भला मानोगे भी क्यों ?

समीर डे अब तक चुप बैठे थे, अब और नहीं रहा गया उनसे।

बोले, आपकी कहानी क्या दैव को Support करती है ? अगर ऐसा है तो फिर मैं चल दिया।

चित्त सरकार बोले, कहानी कोई तुम्हारे अकेले के लिये नही है जी, हम लोग भी है, हमें भी कहानी सुनना अच्छा लगता है, और फिर कहानी क्या ज्यामिति का थियोरम है, जो कुछ प्रमाणित करना पड़ेगा ?

समीर शायद उत्तर देना चाहता था इसका, पर मैंने रोकते हुए कहा, समीर अच्छी तरह जानता है कि कहानी और थियोरम दो अलग चीजें हैं, अतएव तुम लोग तर्क-वितर्क मत करो—। पाँच सौ वर्ष पहले इसका प्रमाण दे दिया गया है! पाँच सौ साल पहले ही मनुष्य ने प्रमाणित

कर दिया है कि मनुष्य का जीवन पापग्रस्त नहीं है, पाप का प्रायश्चित्त करना ही मनुष्य जीवन की एकमात्र साधना नहीं है। मनुष्य ने प्रमाणित कर दिया है कि दुर्भिक्ष, महामारी, निरक्षरता, अत्याचार और दुर्नीति दैव के अमोघ विधान नहीं हैं।

अचानक निर्मल लाहड़ी बोले, आप क्या कहानी के नाम पर हमें रेनेसाँ समझा रहे हैं ?

मैंने कहा, नहीं, पर कहानी के साथ इसका संबंध है इसलिये कह रहा हूँ—

चित्त सरकार ने कहा, ना ना, हम लोग कहानी सुनना चाहते हैं, तत्व नहीं—आप अपनी कहानी शुरू करिये—

मैं बोला, कहानी सुना रहा हूँ इसीलिये तत्त्व को खुलासा कर रहा हूँ, अगर लिखता तो यह नहीं करता। कहानी के साथ ही जुड़ा रहता वह। जो हो, पाँच सौ साल पहले हुए रेनेसाँ के आविर्भाव के फलस्वरूप चर्च के एकछत्र शासन में दरार पड़ गई, नये देश आविष्कार करने के लिये लोग हर दिशा में चल पड़े और अमेरिका, आस्ट्रेलिया व अफ्रीका में उसका बहुत प्रभाव पड़ा···उसी प्रभाव के कारण लिबरेलिज्म का उदय हुआ—

चित्त सरकार बोले, यह सब क्या कह रहे हैं आप दादा ? लिबरेलिज्म, रेनेसाँ—यह सब कौन सुनना चाहता है ?

समीर डे बोले, आप पहले यह बताइये कि आज की इस आलोचना के साथ आज की कहानी का क्या संबंध है ?

निर्मल लाहिड़ी बोले, कहानी अभी शुरू भी नहीं हुई और तुम संबंध ढूँढ़ने बैठ गये ?

समीर डे बोले, लेकिन कहानी किसको लेकर है, यह पूछने का अधिकार तो है हम लोगों को ?

मैंने कहा, नहीं, यह अधिकार नहीं है किसी को ! क्यों नहीं है इस प्रश्न का उत्तर देने लगा तो बहुत समय नष्ट हो जायेगा। अतः इसे छोड़ देना ही अच्छा है। इससे तो मैं बता दूँ कि मेरी यह कहानी प्रेम को लेकर है।

समीर बोले, ओह, फिर वही प्रेम ?

मैंने कहा, हाँ, प्रेम जैसी पुरानी सड़ी-गली चीज़ भी दुनिया में दूसरी कोई नहीं है और न ही वैसी कोरी नई चीज़ ! यह बिल्कुल धरती

जैसी है जो बहुत पुरानी होते हुए भी रोज सूर्योदय के साथ नई हो जाती है।

कुछ क्षण विराम लेकर मैंने फिर कहना शुरू किया, प्रेम कभी पुराना नहीं होता ! और प्रेम सबको मिलता भी नहीं ! जिसको मिलता है वही इसका आनन्द जानता है। प्रेम पास भी खींचता है और दूर भी ठेलता है—परन्तु कभी भी वंचित नहीं करता। प्रेम को लेकर वैष्णव कवियों ने हजारों पदावली लिख डाली हैं, लाखों युगों तक हिय से हिया लगाये रखने पर भी हिया नहीं जुड़ता। बोझा ठेलना है। हम तो पत्नी के साथ अगर तीन घंटे बैठ लेते हैं तो भागने को परेशान हो उठते हैं, लाखों युगों की बात तो सोच कर ही डर से दिल काँपने लगता है। इसलिए समझ सकते हो कि जिसे हम लोग प्रेम कहते हैं वह वास्तविक प्रेम नहीं हैं—प्रेम एक दूसरी ही चीज है।

इसलिए अब शुरू से ही सुनाता हूँ।

बैरिस्टर किरण चौधरी तो ठीक हो गये थे पूरी तरह। अगले दिन हमारे चले जाने का निश्चय हुआ। पहले दिन शाम को हम घूमने निकले।

देवघर में देखने वाली जो भी चीजें थीं, करीब-करीब सभी देख ली थीं। सड़क के किनारे-किनारे चल रहे थे। देवघर की सड़क कैसी होगी तुम लोग समझ ही सकते हो, ऊँची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी। अगल-बगल कोई दुकान या मकान। पिताजी का काम खत्म हो गया था, इसलिए निरुद्विग्न चित्त बातें करते हुए चल रहे थे हम लोग।

पिताजी बोले, चलो इस बहाने तुमने देवघर भी देख लिया।

मैंने कहा, अच्छी तरह कहाँ देखा पिताजी।

—इससे ज्यादा और क्या देखते ?

—यहाँ के किसी आदमी से तो परिचय हुआ ही नहीं—यहाँ भी तो ऐसे बहुत से लोग होंगे, जो बहुत दिनों से यहीं रह रहे होंगे।

इसी तरह बातें करते-करते चल रहे थे कि अचानक एक मकान से एक सज्जन ने बाहर निकलकर पुकारा, कविराज जी, आइये, आइये—

आदमी पिताजी का परिचित नहीं था।

वह सज्जन बोले, आप मुझे पहचान नहीं पायेंगे, यही मेरा घर है, तीस साल से रह रहा हूँ यहाँ—पर उससे क्या हुआ, आइये, अंदर आइये।

अंदर ले जाकर हमें बैठाकर बोले; मेरा नाम तिनकड़िभंज है, हूँ तो बंगाल का ही, पर यहीं रहने लगा हूँ। कलकत्ता, भवानीपुर में हमारा पैतृक मकान है।

फिर पिताजी की तरफ हुक्के की नली बढ़ाकर बोले, लीजिये, हुक्का पीजिये।

पिताजी बोले, रहने दीजिये, मैं हुक्का नहीं पीता।

वह बोले, तो फिर पान खाइये, कुछ नहीं लेंगे तो आपका सत्कार कैसे करूँगा?

इतना कहकर नौकर को आवाज लगाकर पान मँगवा लिये।

फिर बोले, सुना है चौधरी साहब का इलाज करने आये हैं आप?

पिताजी ने कहा, हाँ, अब वह जरा ठीक हो गये हैं।

वह बोले, हाँ, यह भी सुना है, जब बीमार हुए थे, तो मुझे भी बुलवाया था।

पिताजी ने पूछा, आप भी शायद डाक्टर हैं?

उन्होंने कहा, हाँ, पर अब मैंने डाक्टरी छोड़ दी है।

—इसका मतलब?

—मतलब यह कि जिसे डाक्टरी कहते हैं वह मैंने बस एकबार ही की है, जीवन में बस एक ही मरीज ठीक किया है। यह जो कुछ भी देख रहे है, उसी का फल है। यह तिमंजिला मकान, पीछे की यह सात बीघा जमीन, नौकर-चाकर जो कुछ भी है सब कुछ उसी का नतीजा है। आज भी आनाज, तेल, घी, साग-भाजी, कुछ भी खरीदकर नहीं खाना पड़ता—

—यह कैसे!

पिताजी और मैं दोनों आश्चर्य में पड़ गये।

तिनकड़ि बाबू बोले, मैंने डाक्टरी-वाक्टरी कोई पास नहीं की महाशय, बस बँगला की एक होम्योपैथी की किताब पढ़ी थी, फिर इससे ज्यादा क्या होता! बहुत मिल गया, आप ही बताइये कि एक मरीज ठीक करके कितने डाक्टरों को इतना बड़ा मकान, सात बीघा जमीन और जीवन भर का आश्रय मिलता है?

—यों, फिर डाक्टरी क्यों नही की आपने? पिताजी ने पूछा।

—करने की इच्छा तो थी महाशय, रोगी भी कम नहीं आते थे,

नाम हो गया था, धीरे-धीरे काफी लोग आने लगे थे। मैं भी किताब पढ़-पढ़ कर दवा देने लगा था, पर एक भी ठीक नहीं हुआ।

कहकर वह अट्टहास कर उठे।

फिर बोले, चाय पियेंगे न! मैं खुद चाय नहीं पीता ना, इसलिये पूछना ही भूल गया।

पिताजी बोले नहीं-नहीं, यह सब झंझट मत करिये, फिर न मैं चाय पीता हूँ और न मेरा लड़का।

तिनकड़ि बाबू ने कहा, वह न पीना ही अच्छा है कविराज जी, आपका आयुर्वेद शास्त्र क्या कहता है, यह तो मैं नहीं जानता और ना ही होम्योपैथी के शास्त्र की बात जानता हूँ, पर इतना अवश्य जानता हूँ कि चीज अच्छी नहीं है।

पिताजी बोले, यह सब छोड़िये, आप अपनी कहानी बताइये—चलिये यहाँ आया था तो आपसे मुलाकात हो गई। जगह-जगह न जाने कितने बंगाली बिखरे हुए हैं, सभी अपने जैसे हैं, फिर मैं भी तो भवानीपुर में ही रहता हूँ, वहाँ आपसे मिलना नहीं हुआ, हुआ तो यहाँ आकर।

तिनकड़ि बाबू बोले, भवानीपुर में रहता तो था, पर तीस सालों में एक बार भी वहाँ जाना नहीं हुआ, और फिर वहाँ कोई रहता हो तो जाता भी! जो रहते हैं वह जाने पर शायद आदर-सत्कार करें भी, पर अब जाने को मन ही नहीं चाहता—

—भवानीपुर के किस मुहल्ले में आपका घर है?

—चाउलपटि तो अवश्य जानते होंगे आप, अभी भी राजकमल-भंज के वंश का नाम लेने पर वहाँ के दो-चार वृद्ध शायद बता भी दें। पर सुना है कि चाउलपटि का रूप ही बदल गया है अब। और बदलेगा भी क्यों नहीं! इन तीन सालों में देवघर भी क्या कम बदला है! जब मैं शुरू में आया था, तो इस सड़क पर एक भी बत्ती नहीं थी, जानते हैं! वह जो तिमंजिला मकान देख रहे हैं, वहां मैदान था, लड़के फुटबाल खेलने आते थे वहाँ—बस उसके सामने तेल का एक दिया टिमटिमाता रहता था—इस सड़क पर तो घुप्प अँधेरा छाया रहता था! और यह जहाँ मेरा घर है, वहाँ भी कुछ नहीं था, बस छोटी-सी बस्ती थी। कुछ कच्चे घर थे। मैंने भी यही एक कच्चा घर एक रुपये महीना किराये पर लेकर डिस्पेंसरी खोली थी।

—डिस्पेंसरी।

—जी हाँ ! और मेरी होमियोपैथिक डिस्पेंसरी बस नाम की थी, अंदर कुछ भी नहीं था। बाजार से एक टूटी मेज और कुर्सी खरीद लाया था—दोनों के तीन रुपये दिये थे। उस वक्त उतना भी दे सकने की सामर्थ्य नहीं थी मेरी। उस वक्त तो यही चिंता खाये जाती थी कि किराये का रुपया कैसे दूँगा। मरीज तो कोई आता नहीं था और मैं इलाज ही क्या खाक जानता था जो मेरे पास मरीज आता।

पिताजी बोले, पर इतनी जगह होते हुए आप देवघर ही क्यों आये थे ? चिकित्सा करने आये थे ?

—असल में चिकित्सा तो एक बहाना था। सोचा था, बाबा वैद्यनाथ के चरणों में जा पड़ने पर कुछ न कुछ हो ही जायेगा। आपकी तरह किसी की चिकित्सा करने नहीं आया था मैं—मैं तो एक तरह से कहा जाये तो भाग कर आया था—सगे संबंधियों से नाराज होकर घर से भाग आया था। आज भी याद है कि जिस दिन आया था साथ में पत्नी और जेब में कुल सैंतीस रुपये थे।

फिर कुछ क्षण रुककर बोले, आपको अगर जल्दी न हो तो चलिये शुरू से ही सुना दूँ !

—नहीं नहीं, मुझे कोई काम नहीं है, आप सुनाइये। पिताजी ने कहा।

मुझे याद है कि तिनकड़ि बाबू की कहानी सुनते-सुनते अँधेरा गहरा आया था। एक अपरिचित व्यक्ति की बैठक में बैठे-बैठे उस रात जैसे कोई अरबी उपन्यास सुना था। मैं छोटा ही था, पिताजी साथ थे। इसलिये हर विषय में स्वयं कोई प्रश्न नहीं कर रहा था। एक साठ साल का वृद्ध अपने जीवन की कहानी सुना रहा था। सुनते-सुनते मैं भी मानों चाउलपटि के उस परिवेश मे पहुँच कर एक दर्शक बन गया था।

अद्भुत काल था वह। उन दिनों एक जोड़ा जूते की कीमत तीन रुपये थी। एक रुपये में एक शर्ट मिल जाती थी। सस्ते-मंदे का जमाना था। चाउलपटि के स्कूल में पढ़ते हुए अचानक एक दिन नाम कट गया। भैया ने बड़े बाजार की एक दुकान में लगा दिया। सात रुपये महीना वेतन था। भवानीपुर से बड़े बाजार तक पैदल जाना-आना था।

गद्दी पर नौ बजे पहुँचना पड़ता था। दर्माहाट के तीन नंबर मकान की निचली मंजिल पर एक खाने-पीने की दुकान थी, दही-बड़े, जलेबी, पकौड़ी आदि मिलता था। चप्पल फटकारते-फटकारते रोज पहुँचता।

भैया ने कहा, यहाँ लगे रहकर काम-काज सीख ले, फिर दुकान करा दूँगा तुझे।

शुरू-शुरू में दिल से लगा भी रहा, अच्छा काम करने लगा था। कैसे बही-खाता रक्खा जाता है, कैसे हिसाब की गड़बड़ पकड़ी जाती है, कितने माल में कितना मुनाफा होता है, कितनी आय होने पर कितना खर्च करना चाहिये, माल किस दाम में खरीद कर किस दाम में बेचना चाहिये—यही सब सीखने-समझने लगा था।

गद्दी के मालिक घनश्याम बाबू थे।

कहते, ए···बंगाली बाबू—

वह मुझे यही कहकर बुलाते थे। आदमी अच्छे थे। उमर हो गई थी। पश्चिम के किसी प्रदेश से आकर पैतृक व्यवसाय में लग गये थे। कई प्रकार का व्यवसाय था उनका। घी का, गमछों का, कपड़े का। जिस पर हाथ रखते, उसी में पैसा बरसने लगता। उस तरह की दस गद्दियाँ थीं बड़े बाजार में। घनश्याम बाबू टेलीफोन पकड़े बैठे रहते सारा दिन और लोगों को हुकुम देते रहते। मैं कुल सात रुपये महीने का नौकर था, अधिक क्षमता नहीं थी मेरी। दूर से घनश्याम बाबू को टेलीफोन पर किसी को डाँटते देखता तो दिल धुक-धुक करने लगता। सोचता अगर मुझे भी किसी दिन उस तरह डाँटने लगे तो?

वह गद्दी पर बहुत देर तक रहते थे। किसी-किसी दिन तो सात-आठ बज जाते थे। उनके साथ हम लोगों को भी बैठे रहना पड़ता।

भैया किसी व्यवसाय के आफिस में नौकरी करते थे। आफिस से लौटने पर मुझे न देखकर लौटने तक बेचैन रहते।

घर पहुँचने पर कहते, इतनी देर कैसे हुई?

मैं कहता, घनश्याम बाबू आज देर से घर गये।

वह कहते, गद्दी से सीधे घर आना, और कही मत जाना।

सात रुपये से नौकरी शुरू की थी। तय हुआ कि एक-दो महीने बाद वेतन बढ़ाकर दस रुपये कर दिया जायेगा, इसलिए मन लगाकर काम करता था। हमारी उम्र के लड़कों के लिए अनगिनत आकर्षण थे उन दिनों, पर मेरी नजर बस काम की ओर रहती थी। सोचा था, संसार

में जिसका भाई के अलावा कोई नहीं है, उसको खेलने, घूमने, पढ़ने-लिखने की विलासिता शोभा नहीं देती। पढ़ना-लिखना भी मेरे लिए जैसा विलासिता था। सुबह पहुँचकर अपनी डेस्क पर बैठता और दत्त-चित्त बहीखाता लिखता रहता।

एक भैया को छोड़कर दुनिया में मुझे प्यार ही कौन करता था!

बंगाल में लड़कियों का अभाव नहीं है। एक दिन मेरे लिए भी एक रिश्ता आया।

भैया बोले, तुम्हें चिंता करने की जरूरत नहीं है—जो कह रहा हूँ करो।

मैंने थोड़ी आपत्ति उठाई थी।

पर भैया ने फिर कहा था, जब मैं हूँ, तो तुम्हें किस बात की चिंता है? तुम जैसे नौकरी कर रहे हो, किये जाओ, अभी तो मैं मरा नहीं।

अच्छी तरह याद है कि घनश्याम बाबू से छुट्टी माँगते ही उन्होंने कहा था, शादी है? शादी का शौक चढ़ा है?

सकुचाकर मैंने कहा था, भैया बहुत पीछे पड़ रहे हैं, इसीलिये…

—कितने दिन की छुट्टी चाहिये?

—तीन दिन की, इतने में काम चल जायेगा मेरा।

घनश्याम बाबू अच्छे आदमी थे। हेड मुंशी पंडित जी थे। पंडित जी से कहकर उन्होंने तीन दिन छुट्टी दिलवा दी थी। सुना है विवाह के नाम से सभी को खुशी होती है, लेकिन मुझे जाने कैसा डर लग रहा था। किस जमाने की बात है—यौवन शुरू ही हुआ था तब। उन दिनों आनन्द होना ही स्वाभाविक होता—कुछ उत्तेजना, एक रोमांच! लेकिन याद है कि कुछ भी नहीं हुआ था। बस केवल एक ही ख्याल मन में था कि भैया के ऊपर बोझा बढ़ाना होगा यह। कैसे गृहस्थी चलेगी? कैसे भैया इतने लोगों को खिलायेंगे? भैया थे देवता आदमी। दुनिया भर का बोझा अपने ऊपर लेकर जैसे आनन्द मिलता था उन्हें। और भाभी? भाभी का अपना कहने को कुछ भी नहीं था। भैया के कहने में सब चलते थे। संसार में आपने ऐसे आदमी अवश्य देखे होंगे जो सब का सारा दायित्व अपने ऊपर लेकर निश्चितता से चला ले जाते है और दूसरे को आभास तक नहीं होने देते। भैया भी ऐसे ही थे। उनके बच्चे बड़े हो गये थे, उनकी चिंता भी थी—उनकी नौकरी, शादी-

ब्याह ! एक विधवा बहन थी, दो बहनों की;शादी करनी थी । इस पर भी न जाने क्यों वह मेरे विवाह की जल्दी मचा रहे थे ।

जब भी कोई कुछ कहता, बस यही कहते, तुम लोग इतना सोचते क्यों हो, मैं हूँ न ।

वह हैं, यह तो हम भी जानते थे, लेकिन उनकी सामर्थ्य भी तो जानते थे । इसलिए हमारे चिन्तातुर रहते हुए भी उनके मुँह पर सदा ही मुस्कान रहती थी ।

सुबह से रात तक बहनें और भाभी मिलकर जिस तरह गृहस्थी का काम करती थीं, वह देखकर भी दया आती थी । मैं पूरी तनख्वाह लाकर भैया के हाथ पर रख देता था । गिने-चुने रुपये लेकर वह मेरे हाथ पर एक रुपया रखते हुए कहते, यह अपने खर्च पानी के लिए रख ।

मुझे बड़ी शर्म आती थी । रुपये ही कितने थे ! विवाह के बाद क्या तो उन्हें दूँगा और क्या अपने लिये रक्खूँगा, बस यही चिंता खाये जाती ! अचानक अगर कभी उन्हें कुछ हो गया तो क्या करेंगे हम ? क्या खायेंगे और कहाँ रहेंगे ? गद्दी पर आते-जाते यही सब सोचता रहता । कई बार तो गाड़ी के नीचे आते-आते बचा । चप्पल टूट जाती पर भैया से कहते शर्म आती । छतरी के अभाव में न जाने कितनी बार बारिश में नहाया होऊँगा । भीगे कपड़े बदन पर ही सूख जाते । कभी मुँह खोल कर किसी से कुछ नहीं कहता ।

घर में जो नया व्यक्ति आया, वह भी बिल्कुल मेरे ही जैसा था । मेरे ही समान लज्जा से सिकुड़ी-सिमटी रहती । मेरी अवस्था खराब थी इसलिये वह स्वयं को भी जैसे सबसे छुपाये रहती, गृहस्थी के कामों में अपने को खो देना चाहती । मैं जब आफिस से लौटता, तो पहले भैया से मिलकर तब अपने कमरे में जाते । कभी हमारे वंश का कितना नाम था, यह बात जैसे भूले रहना चाहता ।

कभी-कभी भैया पूछते, आज क्या खबर है ? घनश्याम बाबू अच्छे हैं न ?

मैं कहता, हाँ—

जैसे घनश्याम बाबू के ठीक-ठाक रहने पर ही मेरा और हमारा ठीक-ठाक रहना निर्भर था । मानों वही हमारे भाग्यविधाता थे । और भाग्यविधाता नहीं थे, यह कहूँ भी क्यों ? उनके जरा सा बीमार पड़ते

ही गद्दी के सारे आदमी विचलित हो जाते, मुझे भी चिंता होती। एक घनश्याम बाबू पर इतने लोगों का परिवार चल रहा था। वही तो सब कुछ थे। जिसे भी उनकी कृपा-दृष्टि का एक कण भी मिल जाता, धन्य हो जाता।

मेरी पत्नी भी सब समझती थी। गद्दी पर अगर किसी दिन हेड मुंशी की डाँट खाने से मन खराब रहता तो उसे पता चल जाता। उस दिन वह कुछ नहीं पूछती, बस चुपचाप मेरी ओर देखते हुए पंखा झलती रहती।

मैं अगर कहता कि हवा की जरूरत नहीं है, तुम सोओ जाकर !

तो बस इतना कहती, तुम सो जाओ, मैं हवा कर रही हूँ।

गर्मी के कारण नीद ही कहाँ आती थी। परन्तु उसके जोर-जोर से पंखा चलाने पर भी नीद नही आती। पड़ा-पड़ा सोचता रहता कि क्या कर पाया जीवन में ! और मेरे जीवन का मूल्य ही क्या है। गृहस्थी की समृद्धि के लिये मैं कर ही क्या सकता हूँ, मेरी क्षमता ही कितनी है।

पत्नी मुझे समझाने की कोशिश करती, तुम इतना सोचते क्यों हो, मैं तो सुख से ही हूँ।

भैया कहते, तुम्हारी नौकरी लग गई, यही बहुत है, अब मुझे कोई चिंता नहीं है।

सचमुच जैसे सारी चिन्ताएँ मुझे ही थीं। कैसे बड़ा आदमी बनूँगा, नाम कमाऊँगा, भैया का मुँह उज्ज्वल करूँगा ! सड़क पर चलते-चलते आस-पास के मकानों को तृषित नजरों से देखता। मन में आता ऐसा एक मकान होने पर कितना सुख होगा। उन मकानों में रहने वाले कितने सुखी है। अन्दर बिजली के लट्टू जलते देखता तो मेरे मन में जैसा अँधेरा छाने लगता। हम सबसे गरीब थे। बहन की मैली साड़ी, भैया का दुबला-पतला शरीर, पत्नी का निराभरण चेहरा एक-एक करके आँखों के सामने घूम जाता।

गद्दी पर काम का अन्त नही था इसलिए वहाँ जाकर सब भूल जाता। चालान, इन्वायस, पार्सल, आर्डर, हिसाब-किताब में डूब जाता।

गद्दी पर बगाली मैं अकेला ही था।

एक दिन हेड मुशी ने कहा, लोग कहते है। कि बंगालियों की बुद्धि बहुत तेज होती है।

दूसरी तरफ से तिलकचांद बोला, बंगाली मछली जो खाते हैं पंडित जी।

पंडित जी ने मेरी ओर मुड़कर पूछा, आज मछली खाई थी बंगाली बाबू ?

चतुरानन जी ने कहा, बंगाली रोज मछली खाते हैं, सुवह-शाम दोनों वक्त।

पंडित जी ने पूछा, ब्राह्मण भी मछली खाते हैं बंगाली बाबू ?

तब तक मैं चुप था, केवल सुन रहा था। पंडित जी का प्रश्न कानों में पड़ते ही मुँह उठाकर बोला, बंगालियों में सभी मछली खाते हैं मुंशी जी, ब्राह्मण भी।

सुनते ही पंडित जी छिः छिः कर उठे।

मैंने कहा, इतने दिनों से बंगाल में रह रहे हैं आप और इतना भी नहीं जानते ?

वहीं से सिर उठाकर तिलक चाँद ने कहा, बंगाली ब्राह्मणों की जात नहीं होती मुंशीजी—वह लोग गोश्त भी खाते है-मुर्गे का गोश्त।

चतुरानन जी बोले, मुर्गे का, हंस का, पंछी का—सबका गोश्त खाते हैं बंगाली ब्राह्मण।

पंडित जी बोले, वड़े गंदे है बंगाली !

आमतौर पर मैं ऐसी बातों का विशेष प्रतिवाद नहीं करता था। बस यही कहा मैंने कि बंगाल‍ने स्वामी विवेकानन्द, राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे बड़े-बड़े आदमी पैदा किये हैं।

नाम सुनकर वह लोग कुछ भी नहीं समझ पाये। पूछने लगे, कौन थे यह लोग ? सेठ थे ? किस चीज का कारबार करते थे ?

—कारबार नहीं करते थे पंडित जी, ऐसे महान आदमी थे सब, मछली खाने वालों के देश में ही जन्मे थे सब।

मेरी बात सुनकर तिलकचाँद और पंडितजी हो-हो करके हँस उठे थे।

परन्तु वास्तव में मन ही मन पंडित जी मुझे प्यार भी करते थे। मेरे जितना विश्वास उन्हें किसी पर नहीं था।

लोगों की आड़ में मुझसे कहते, बंगाली बाबू मन लगाकर काम सीख लो, सेठजी से कहकर तुम्हारी तनख्वाह बढ़वा दूँगा मैं।

रुआँसू होकर मैं कहता, सात रुपये में मेरा पूरा नहीं पड़ता पंडित जी ! बहू है, दो बिन ब्याही बहनें है, भैया पर बोझ बना बैठा हूँ—

मेरा रुआँसू चेहरा देखकर धमकाते हुए कहते, रोते क्यों हो ! काम करो सेठजी के खुश होते ही रुपये बढ़ाने को कह दूँगा।

परन्तु घनश्याम बाबू मेरी पहुँच के बाहर थे। शुरू-शुरू में तो उनके पास पहुँच ही नहीं पाता था। एक बहुत बड़ी मोटी गद्दी पर बड़ी-बड़ी जिल्द बंधी बहियों से घिरे बैठे रहते थे वह। दो-दो टेलीफोन थे, जो रात-दिन बजते रहते थे। एक बन्द होता तो दूसरा बजना शुरू कर देता। वहीं बैठे-बैठे लाखों करोड़ों का लेन-देन करते थे घनश्याम बाबू। पूरे कलकत्ते में उनके आदमी घूमते रहते थे। कोई गंगा को जेटी पर जाता, कोई रेल गोदाम जाता तो कोई शेयर मार्केट। हर जगह से टेलीफोन आता और घनश्याम बाबू गद्दी पर बैठे-बैठे निर्देश देते रहते —रेलवे के बाबू माल नहीं छोड़ रहे तो पान खिलाओ, गंगा की जेटी पर पुलिस ने भैंसा गाड़ी रोक दी है तो उसके हाथ में कुछ दे दो। रुपये फेंकने पर सब वश में हो जाते हैं। सीधी उँगली से घी नही निकलता तो उँगली टेढ़ी कर लो।

वह कहा करते थे, दुनिया तो रुपये से चलती है—रुपया बिखेरो तो हर काम बन जाता है।

कभी-कभी हम लोगों के पहुँचने के पहले ही घनश्याम बाबू गद्दी पर पहुँच जाते थे। सब सहम जाते, सारा दिन आपस में बातचीत नहीं करते, अपनी-अपनी जगह पर सर झुकाये काम करते रहते। उनके कमरे से टेलीफोन पर चीखने की आवाजें आती रहतीं—अभी बेच··· बेच दे—

तो कभी, ली-ली-ली—

शुरू-शुरू में मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता था।

पंडितजी भी डरे हुए अपना काम करते रहते। ऐसी चुप्पी छाई रहती जैसे सबको साँप सूँघ गया हो।

ऐसे ही एक दिन मेरा चेहरा देखकर पंडितजी ने कहा था, आज अपने मन से काम करो बंगाली बाबू।

मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया था।

जरा देर चुप रहकर मैंने पूछा था, आज क्या हुआ है मुंशीजी ?

वह बोले थे, कोयला गिर गया है।

कोयला गिर जाना बहुत खराब था। घनश्याम बाबू की कम्पनी के बहुत से रुपये कोयले के शेयरों में थे। उसी शेयर के भाव गिर जाने पर कम्पनी कहाँ जायेगी और कम्पनी नहीं रहेगी तो हमारा क्या होगा कम्पनी के साथ हम लोगों का भाग्य भी तो जड़ित है—इन्हीं चिन्ताओं व डर में सारा दिन बीता था! ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे नौकरी चली गई थी और मैं बेकार हो गया था। सोच रहा था आज भैया के सामने कैसे जाकर खड़ा होऊँगा! किस मुँह से बात करूँगा।

लेकिन ऐसी हालत ज्यादा दिन नहीं रही। कोयला फिर चढ़ गया था। उस दिन गद्दी पर घनश्याम बाबू फिर देर से आये थे। उस दिन फिर हँसी ठट्ठा हुआ था हम लोगों में।

पंडित जी ने कहा था, तुम लोगों का मोहन बागान जीत गया बंगाली बाबू—तुम किस दल में हो?

तिलक चाँद ने कहा था, बंगालियों का बस मोहन बागान है पंडित जी, और कुछ नहीं।

चतुराननजी बोले थे, और मछली भी है—

पंडित जी ने पूछा था, आज कौन सी मछली लेकर खाई बंगाली बाबू?

मैं हँस भर दिया था, किसी पर गुस्सा नहीं आया था मुझे। कंपनी की अवस्था सुधर गई थी। कोयले का भाव चढ़ गया था, घनश्याम बाबू का मिजाज अच्छा हो गया था फिर, मेरी नौकरी बच गई थी —महीना पूरा होते ही वेतन मिल जाने की उम्मीद बँध गई थी।

उस दिन पत्नी से भी हँसकर बात की थी।

उसने कालीघाट का प्रसाद दिया था लाकर। कहा था, तुमने जिस तरह चिन्ता में डाल दिया था कि माँ की पूजा बोल दी थी।

आज जो मेरा ऐश्वर्य देख रहे है आप—इसकी तो कल्पना भी नहीं कर पाता था तब! इसीलिये उस वक्त की बातें आपको सुनाना अच्छा लग रहा है। किस तरह कष्ट व चिन्ताओं में वह दिन बिताये थे, वह शायद आप ठीक से समझ नहीं पायेंगे। आप सोच रहे होंगे कि नौकरी तो गद्दी पर खाता लिखने की करता था, उससे होमियोपैथिक डाक्टर कैसे बन गया और होमियोपैथी से इतना रुपया कैसे कमा लिया। आप यहाँ किरण चौधरी का इलाज करने आये हैं, इसीलिये आपको देखकर पुराने दिनों की कहानी सुनाने का मन हो आया।

पिताजी ने कहा, सुनाइये, सुनाइये, हमें कोई काम नहीं है इस वक्त ऐसे ही इस तरफ घूमने निकल आये थे, आपके साथ परिचय हो गया, अच्छा ही हुआ—

तिनकड़ि बाबू कहने लगे, रोज ही आप लोगों को इधर से गुजरते हुए देखता था तो बुलाऊँ-बुलाऊँ सोचता ही रह जाता था और तब तक आप आगे निकल जाते थे। आज बुलाने का पक्का निश्चय करके दरवाजे के सामने ही बैठा था।

फिर जरा रुककर कहने लगे, उस जमाने की आपको अवश्य याद होगी कविराज जी, क्या सस्ते-मन्दे का जमाना था। पर क्या बताऊँ कि उस सस्ते में भी कितने अभावों में दिन बीते थे। पत्नी को कभी एक अच्छी साड़ी भी खरीद कर नहीं दे सका था। दिन-रात मन ही मन भगवान से दुआ माँगना रहता था—कम्पनी की अवस्था और दृढ़ हो भगवान, कोयले लोहे या ताँबे का भाव न गिरे कभी—इसी में हमारा भला है।

महीना पूरा होते ही वेतन लेकर दौड़ता हुआ जाता और भैया के हाथ पर रख देने के बाद जी को जरा चैन पड़ता।

भैया पूछते, वेतन बढ़ाने की बात नहीं कहते वह लोग ?

सोचता वेतन बढ़ने की बात तो दूर, अगर नौकरी बची रहे, यही बहुत है। पर ऊपर से कहता, अभी मैंने बात की ही नहीं भैया।

—क्यों ?

—अभी पिछले दिनों घनश्याम बाबू का मिजाज खराब था। अभी बढ़ाने की बात करने पर कहीं और न बिगड़ जाये।

—पर उन लोगों ने तो कहा था कि बढ़ा देंगे ?

—कहा तो था, पर कोयले के शेयर के भाव गिर जाने से कई दिन आफिस में हलचल रही।

—शेयर मार्केट के भाव तो हमेशा चढ़ते उतरते रहेंगे, घनश्याम बाबू का क्या एक कारबार है, लाख दो लाख रुपये जाने आने से उन्हें क्या फर्क पड़ता है!

मैंने कहा, पंडित जी तो घबरा गये थे, कह रहे थे कि अगर कोयले ज्यादा गिर गया तो कम्पनी बन्द हो जायेगी।

—दुर, ऐसा भी कभी होता है। घनश्याम बाबू का नया व्यवसाय थोड़े ही है! सात पीढ़ियों से कलकत्ते में कारबार कर रहे हैं, दो-

चार बार भी अगर कुछ हो जाये तब भी उनका कुछ नही बिगड़ेगा, वह हम बंगालियों जैसे थोड़े ही हैं !

सचमुच जितना घनश्याम बाबू को देखता उतना ही आश्चर्यचकित रह जाता मैं ।

पंडितजी उनके बारे में बताते रहते—लिखना-पढ़ना सीखा नही । पिता शिवश्याम बाबू के साथ छुटपन से ही कभी-कभी गद्दी पर आते । पिता अन्दर गद्दी पर बैठे इन्हीं की तरह टेलीफोन पर चीखते-चिल्लाते और ये पंडितजी के साथ गप्पें मारते । बड़े कृपण थे शिवश्याम बाबू । इतना बड़ा व्यवसाय नही था तब । थोड़ी पूंजी से थोड़े-थोड़े शेयर लेते थे । बड़ी सावधानी से काम करते थे । तेरह लड़के थे, हर एक को अलग-अलग कारबार में लगा दिया था । कहा करते थे, ज्यादा पैसा नहीं रक्खूंगा, लड़के नवाब हो जायेंगे । बड़े लड़के घनश्याम बाबू को अपना पैतृक कारबार सौंपा था ।

शिवश्याम बाबू के पूर्वज पटना, गया या छपरा—किसी जिले से आये थे । उन दिनों कलकत्ता बसना शुरू ही हुआ था । फुटपाथ पर गमछे की ढेरी लगाकर बेचते थे या कन्धे पर उठाकर चौराहा-चौराहा घूमते थे । थोड़े मुनाफे पर ही बेच देते थे । उसी से दही-हाट में एक छोटी दुकान खोली थी । और फिर वही दुकान फूलते-फलते इतनी बड़ी कम्पनी बन गई । कॉटन स्ट्रीट पर मकान बन गया । और अकेला वही मकान नहीं, सात लड़कों के लिये अलग-अलग मकान बने थे । फिर तो सबके अलग-अलग मकान बन गये थे । घनश्याम बाबू के दर्माहाट वाली गद्दी के मकान पर ही सारे हिन्दुस्तान के लोग आकर बैठते थे । व्यापारी आकर ठहरते थे, उनके ठहरने खाने का प्रबन्ध भी था । मकान के पश्चिम वाली तरफ व्यापारियों के मुनीम आकर ठहरते थे । उनके लिये अलग रसोईघर व नौकर और महाराज थे । सुबह उठकर सारे मुनीम गंगा स्नान करके आते और नीचे की चाय की दुकान पर कुल्हड़ों में चाय पीकर अपने-अपने काम पर निकल जाते । फिर दोपहर को लौटकर खाना खाते । एक लम्बा सोने का कमरा था, जहाँ चारपाइयों की लाइनें लगी होती थीं, वही सब सोते थे । सब पुराने ग्राहक थे घनश्याम बाबू के ।

रसोई में हमेशा हँसी-मजाक चलता रहता । महाराज सभी को पहचानता था । कोई पूछता—आज क्या बना है चौबेजी ?

वह कहते, अरहर की दाल और भिंडी की सब्जी और रोटी।

—रात को क्या बनाओगे ?

—खिचड़ी !

दूसरा कहता, खिचड़ी में मिर्च ज्यादा डालना। बंगाल में रहते-रहते तुम भी बंगाली बन गये हो चौबेजी, पूरे बंगाली।

महाराज, नौकर, मुंशी सब हँस पड़ते।

एक कहता, कलकत्ता भी अजब शहर हैं चौबेजी, छप्पन साल से रह रहा हूँ यहाँ, ऐसा शहर दूसरा नही देखा। तुम्हारे शिवश्याम बाबू बड़े भले आदमी थे, राजा आदमी थे। उस जमाने मे········ फिर बात अधूरी छोड़कर पूछता, घनश्याम बाबू की तबियत तो अच्छी है ?

—नहीं हुजूर।

घनश्याम बाबू को तबियत कई दिनों से खराब चल रही है, गद्दी पर नहीं आये। पंडितजी है। चतुरानन जी, तिलकचाँद जी हैं—और एक बंगाली बाबू भी है—

सुबह से ही शोर-गुल शुरू हो जाता था गद्दी पर। स्टेशन से आने वालों का ताँता लगा रहता। रसोई धोई-पोंछी जाती। जमादार आकर सारे मकान की सफाई करता।

रसोई में जब मुनीमों का खाना चलता तो नीचे का चायवाला चाय की केटली और कुल्हड़ लिये अन्दर आता। चायवाले को दम लेने की फुर्सत नहीं होती थी। दस गद्दियों चाय देनी पड़ती थी।

सीढ़ियों से ही आवाज लगानी शुरू कर देता, गरम चाय। लकड़ी के जीने पर उसके कदमों की पट-पट आवाज होती। पंडित जी, चतुरानन जो और तिलक चाँद जी चाय लेते।

तिलक चाँद जी पूछते; चाय नही पियोगे बंगाली बाबू ?

मैं कहता, मैं चाय नहीं पीता।

चाय कैसे पीता ! कुछ पैसे बचते तो महीने के आखीर में सहारा मिल जाता। चाय पीने की इच्छा होते ही, भैया, बहनो, भाभी व पत्नी का मुँह आँखों के सामने घूम जाता। अपराध के डर से सर झुकाकर समस्त विकास-ऐश्वर्य से मुँह मोड़कर अँधेरे में अपने को छुपा लेता। सोचता, यह सब मेरे लिये नही है, यह सब निषिद्ध है मेरे लिये—जीवन भर के लिये निषिद्ध।

शायद इसी तरह मेरा सारा जीवन घनश्याम बाबू की गद्दी पर

बीत जाता। शायद इसी तरह गद्दी के उत्थान-पतन के साथ अपने को जोड़ लेता। परन्तु एक दुर्घटना घट गई। बहुत बड़ी दुर्घटना! और मेरे जीवन के समस्त लेन-देन का हिसाब एक क्षण में आमूल बदल गया।

अगर वह दुर्घटना नहीं घटती तो आज आप मुझे यहाँ नहीं देखते। न यह मकान होता और न इस आराम व शांति से शेष जीवन बिता पाता।

एक दिन घनश्याम बाबू तबियत खराब हो जाने से गद्दी पर नहीं आ पाये! मैं सदा की तरह गद्दी पर पहुँचा। बारिश तेज थी, काफी भीग गया था। पहुँचते ही पंडित जी बोले, बंगाली बाबू!

पुकार सुनते ही पास गया।

बहुत व्यस्त थे पंडित जी। बोले, तुम्हें कॉटन स्ट्रीट जाना पड़ेगा आज।

—कॉटन स्ट्रीट? कब?

—आज शाम को। घनश्याम बाबू का टेलीफोन आया था, उनकी तबियत ठीक नहीं है। दस्तखत कराने को तीन खाते ले जाने है।

मैंने कहा, दीजिये, अभी चला जाता हूँ।

वह बोले, अभी तैयार थोड़े ही है। वाउचर जमा होने के बाद ही तो तैयार होंगे।

गद्दी का काम खत्म होने पर खाते घनश्याम बाबू के घर पहुँचाने थे और अगले दिन सुबह लेकर आने थे।

नौकरी करता था तो जो भी कहा जाता करना ही था। मना करने से कौन सुनता! उस दिन गद्दी जल्दी बंद हो गई। सबको छुट्टी मिल गई थी, पर मेरी ही तकदीर में छुट्टी नहीं थी। घनश्याम बाबू के घर जाकर सब समझाना था, डर से कांप रहा था मैं। सोच रहा था; क्यों पंडित जी ने मुझे इस मुसीबत में डाल दिया! मैं तो गद्दी पर अकेले एकान्त में काम करके ही सन्तुष्ट था। मैं यथा संभव घनश्याम बाबू के पास जाना ही नहीं चाहता था कभी। सरल भीरु प्रकृति का आदमी था मैं। हमारे जैसे लोग जीवन में मानों हारने के लिये ही जनमते हैं। हम विजय नहीं चाहते, बस किसी तरह टिके रहना चाहते हैं। कहीं कोई विपर्यय न घटे, कोई व्यतिक्रम न हो। अव्याहत शांति से जीवन बीत जाये। न हम किसी की कोई क्षति करें और न हमें कोई नुकसान पहुँचाये—इस [illegible] के आदमी होते हैं हम मध्यवर्गी। यही मनोवृत्ति [illegible] में भी [illegible]

आया था। सोचा था, इसी प्रकार दूसरों की नौकरी करते हुए दुख कष्ट में जीवन बीत जायेगा। इससे अधिक कुछ चाहा भी नहीं था—चाहने का साहस ही कभी नहीं हुआ। साहस होता भी कैसे! हम लोग सत्यमार्ग पर तो चलते है, परन्तु दसजनों के सामने छाती फुलाकर सच बात कहने का साहस नहीं होता हमसे। हम मन ही मन गरजते हैं, अन्याय का प्रतिशोध लेने का संकल्प करते हैं, परन्तु मुँह खोलकर प्रतीकार करने के समय डर कर पीछे हट जाते है; असल में मैं भीरु प्रकृति का आदमी था, नौकरी के लिये ही बना था। और नौकरी भी कोई ऐसी नौकरी नही थी—अश्रद्धा, अवज्ञा, अवहेलना की नौकरी थी वह। मेरे न होने से घनश्याम बाबू को कोई फर्क नहीं पड़ता था। मैं घर पर भी एक बोझा था और गद्दी पर भी। मेरा अभिमान दुर्जेय था, अनुभूति तीव्र थी, पर क्षमता सामान्य थी। जरूरत पड़ने पर प्रतिवाद भी नही कर सकता था।

एक ऐसे आदमी को कॉटन स्ट्रीट घनश्याम बाबू के घर भेजा गया।

शाम हो गई थी।

कॉटन स्ट्रीट जानी पहचानी थी। उन्हीं सब रास्तों से चलते हुए मैं गद्दी पर जाता था। उस समय भी सड़क पर काफी भीड़ थी। उन मुहल्लों में काफी रात तक भीड़ रहती थी।

चलते समय पंडितजी से पूछा था, घनश्याम बाबू से क्या कहना है?

पंडितजी ने कहा था, कहना कुछ नहीं है, बस खाते दे देना।

फिर पूछा था, घनश्याम बाबू क्या पहली मंजिल पर रहते हैं?

जरा गुस्से से उन्होंने कहा था, यह जरा सा काम भी नहीं होगा तुमसे? वह पहली मंजिल पर रहते हैं या दूसरी तीसरी पर, यह भी मुझे बताना पड़ेगा? उनके घर दरवान, नौकर कोई नहीं है?

शर्मिन्दा हो गया था मैं। बड़े आदमी का मकान था—दरवान, नौकर मुंशी किसी न किसी का सामने होना स्वाभाविक ही था। किसी से भी पूछा जा सकता था।

नम्बर ढूंढ़ता हुआ मकान के सामने पहुँचा तो देखा बहुत बड़ा मकान था—बिल्कुल सड़क के ऊपर, चार-पांच मंजिला मकान। छत पर सफेद व हरे रंग की रेलिंग थी। नीचे एक दरवाजा था। दरवाजे पर कोई नहीं था पर लोग उसी दरवाजे से जा आ रहे थे। मुझे वहाँ खड़ा देख-कर कोई कुछ पूछ भी नही रहा था। अन्दर घुसते ही दोनों तरफ दो

कमरे थे और फिर आँगन। आँगन के चारों ओर पतले-पतले लाल नीले खंभे थे। कहीं पास ही काँसे का घंटा वज रहा था। शायद आरती हो रही थी।

दबे पाँव अन्दर गया।

सचमुच ही आरती हो रही थी। शायद घर की देवमूर्त्ति थी। धूप-धूनी से कमरे में धुंधलका छाया हुआ था। एक आदमी झनुझन् झाँझ वजा रहा था। बड़े आदमी का मकान था, रोज ही पूजा आरती होती होगी। चारों ओर दीवालों पर तरह-तरह की तस्वीरें लटक रही थीं। हनुमान का लंकादहन, सीताहरण, हनुमान का वक्ष चीरकर राम की मूर्त्ति का दिखाना आदि। खाते बगल में दबाये बहुत देर तक खड़ा रहा वहाँ। मन ही मन देवता को प्रणाम भी किया। भले की बंगालियों का ठाकुर नहीं था, पर जो कोई भी था, था तो आखिर भगवान ही। भगवान तो सभी का भगवान होता है। और फिर मुझे भगवान के अलावा भरोसा भी किस का था! सिर झुकाकर बहुत देर तक प्रणाम करता रहा था। फिर इधर-उधर देखने लगा, पर किसी ने भी मेरी ओर घूमकर नहीं देखा। समझ में नहीं आ रहा था, किससे पूछूँ, बात करूँ। दो चार नौकर जैसे लोगों को आते देखा भी, सभी हिन्दुस्तानी लग रहे थे, परन्तु वह लोग भी मेरी ओर देखे बिना बगल से निकल गये, जैसे मैं वहाँ था ही नहीं। अन्दर झाँककर देखा—बहुत बड़ा आँगन था और फिर चारों ओर दालान के बाद कमरे।

एक आदमी बाहर आ रहा था। निकट आते ही मैंने पूछा, बाबूजी कहाँ हैं?

मेरी ओर ठीक से देखे बिना ही वह बोला, भीतर जाओ।

और जिस तेजी में आया था, उसी तेजी में चला गया।

मैं उसी तरह चुप खड़ा रहा। समझ नहीं पा रहा था, अंदर कहाँ जाऊँ।

बरामदे के किनारे बत्ती जल रही थी पर उससे पूरा आँगन प्रकाशित नहीं था। धुंधला-धुंधला था सब। 'अँधेरे के कारण कोई कहीं बैठा था कि नहीं, यह भी दिखाई नहीं दे रहा था। और आरती के घंटे, झाँझ की आवाज के कारण और कोई आवाज सुनाई नहीं दे सकती थी।

धीरे-धीरे आँगन में गया। इधर-उधर नजर दौड़ाई, मकान आकाश छू रहा था। नक्षत्र विहीन आकाश का एक चौकोर टुकड़ा सर पर दिखाई

दे रहा था केवल हर मंजिल पर चारों ओर रेलिंग घिरा बरामदा था। हर मंजिल पर बरामदे में बहुत ही कम पावर के बल्व टिमटिमा रहे थे। मकान देखकर लगता था कि अन्दर बहुत सारे लोग रहते होंगे। परन्तु ऐसा नहीं था—जितने आदमी थे, उनसे ज्यादा नौकर चाकर थे और जितने नौकर चाकर थे, उनसे कई गुना कमरे थे।

बड़े चक्कर में पड़ गया था, किससे पूछूँ कि घनश्याम बाबू कहाँ मिलेंगे।

एक ओर पगडीवाला हाथ में बाल्टी लिये आता दिखाई दिया।

झट से आगे बढ़कर पूछा, बाबूजी कहाँ रहते हैं ?

मेरी ओर देखकर उसने कहा, अन्दर जाइये।

इतना कहकर वह भी तेज कदमों से चला गया।

फिर मुश्किल में पड़ गया था।

बहुत देर खड़ा रहा उसी तरह। उस दिन की याद आने पर आज भी शरीर में सिहरन दौड़ जाती है। हालांकि नौकरी के लिये सब कुछ करने को तैयार था मैं। नौकरी के लिये मान-अपमान सब कुछ सहना पड़ता है। लेकिन तब तक यह कहाँ पता था कि सर पर तलवार लटकी हुई थी। कहाँ मालूम था कि गद्दी से किस खोटी घड़ी में घनश्याम बाबू के घर के लिये चला था। तिलक चांद या चतुरानन जी अथवा पंडित जी खुद ही वह काम कर सकते थे। पर शायद मेरी भलाई के लिये ही पंडितजी ने मुझे भेजा था; ताकि मैं घनश्याम बाबू की नजरों में पड़ जाऊँ, उनके सामने प्रमाणित हो जाये कि मैं काम का आदमी था और मेरा वेतन बढ़ जायें।

सीढ़ी के पास एक आदमी शायद अफीम के नशे में ऊँघ रहा था।

उसके पास जाकर पूछा, बाबूजी किधर मिलेंगे ?

मेरी ओर अच्छी तरह देखा भी नहीं उसने और कह दिया, ऊपर—

कहाँ का पानी कहाँ जाकर ठहरता है, कोई कह सकता है क्या। अब देखिये न, नौकरी थी सात रुपये महीने की, उसमें भी दिन भर गद्दी पर काम करो और शाम को मालिक के घर जाओ। यही नियम है। नहीं तो उस दिन वह विपदा ही क्यों आती। उस दिन की छोटी सी घटना ने जीवन में चरम दुर्भाग्य ला दिया था लेकिन आज उसे दुर्भाग्य भी कैसे कहूँ ? आज तो उसे सौभाग्य ही कहना पड़ेगा। नहीं तो सारा जीवन शायद उसी सात रुपये महीने में गद्दी पर बिताना पड़ता।

अँधेरे जीने पर धीरे-धीरे सँभलता हुआ ऊपर चढ़ने लगा। जीना जहाँ समाप्त हुआ था वहाँ से लेकर आखीर तक लंबा बरामदा था।

इधर-उधर नजर दौड़ाई। ऐसा लगा जैसे पश्चिम की ओर के एक कमरे से कोई निकल कर पूर्व की ओर के एक कमरे में गया।

पुकार कर घनश्याम बाबू का कमरा पूछने का मन हुआ, पर जब तक मुँह खोलता वह न जाने कहाँ गायब हो गया था। अनुमान लगाकर एक ओर के बरामदे में चलने लगा मैं।

दिल धक-धक कर रहा था। सोच रहा था, यह कहाँ आ गया मैं? कैसा मकान है यह? इतने कमरे, इतने लंबे-लंबे बरामदे, कमरों में जरूर बहुत से लोग होंगे! पर किसे पुकारूँ!

सीधा चलता रहा। सारे कमरों के दरवाजे भिड़े हुए थे। किस कमरे में जाऊँ, समझ में नहीं आ रहा था। काफी चलने के बाद एक मोड़ आया तो दाहिनी ओर घूम गया। वहाँ भी लंबा बरामदा था।

एक बार पीछे की ओर घूमकर देखा।

कितनी दूर आ गया, पता ही नहीं चल रहा था।

एक बार तो लौट जाने का मन हुआ। बिना कुछ कहे-सुने न जाने कहाँ घुस गया था। शायद अंतःपुर था। शायद पुरुष का प्रवेश निषिद्ध था वहाँ। लेकिन वापस लौटने को भी जी नहीं चाहा। सभी ने तो सीधे अन्दर जाने को कहा था—दो-तीन से तो पूछा था। तो क्या अंदर आने का कोई और जीना भी था!

फिर रुककर इधर-उधर देखा।

वहाँ सड़क की ट्राम की घड़-घड़ सुनाई नहीं दे रही थी। बहुत दूर से आरती के घंटों व झाँझों की आवाज आ रही थी। इतना बड़ा मकान था, कहाँ से कहाँ पहुँच गया था! लौटना चाहता भी तो शायद लौट नहीं पाता, किसी के बताये बिना रास्ता पहचानना मुश्किल था।

पास ही एक कमरा था, दरवाजा भिड़ा हुआ था।

सोचा, देखूँ अगर अन्दर कोई हो तो उसी से पूछूँ।

जरा सा ठेलते ही दरवाजा खुल गया।

बड़ा-सा बैठने का कमरा था। दीवालों पर कुछ तस्वीरें लटकी हुई थीं, जिनमें अधिकतर देवी-देवताओं की थी। तीन सोफे और कुछ कुर्सियाँ पड़ी थीं। एक टेबिल थी और फर्श पर कार्पेट बिछा हुआ था।

ऐसा लगा जैसे कमरे में कोई था, जो जरा पहले ही कहीं चला गया

था। सोचा यहां इन्तजार करने से शायद किसी से सामना हो जाये, कोई नौकर-चाकर ही आ जाये। देखने से तो यही घनश्याम बाबू का बैठने का कमरा लगता है।

पर अचानक एक घटना घट गई।

बगल के कमरे में किसी औरत की आवाज सुनाई दी।

हिन्दी मैं बोल तो ठीक से नही पाता था, पर गद्दी पर काम करने की वजह से समझने अच्छी तरह लगा था।

किसी ने कहा, शरम नहीं आती तुम्हें ?

बड़ा ही मधुर पर क्रुद्ध स्वर था।

फिर किसी पुरुष का स्वर सुनाई दिया—

तुम विश्वास करो जयन्तिया, मेरी बात तो सुनो।

लड़की बोली, ठहरो, बेवकूफ कहीं के।

—इतना मत चिल्लाओ, कोई सुन लेगा।

—कोई नहीं सुनेगा, आज कोई नहीं है घर में, सब शादी में दावत खाने गये है—इसीलिये तुम्हें बुलवाया है। लड़की ने उसी तेजी में कहा।

आदमी बोला, क्यों, मैं तो आता ही रहता हूँ, बिना बुलाये ही आ जाता हूँ।

—चुप रहो ! एक नम्बर के लंपट हो तुम। तुम सोचते हो कि मुझे पता नहीं है आजकल तुम कहां जाते हो।

—मैं भला कहां जाता हूँ ! अपने काम के अलावा कहीं भी तो नही जाता।

लड़की को बहुत गुस्सा आ गया था शायद। कहने लगी, झूठ मत बोलो। मुझे सब कुछ पता है। परसों रात कहां थे तुम ? सारी रात घर नहीं आये। तुम्हारा ख्याल है कि मुझे मालूम नहीं तुम किससे साथ सारी रात रहे, मेरे से छुपाने की कोशिश मत करो।

बातचीत सुनकर मैं जरा आश्चर्य में पड़ गया, पर समझ कुछ नहीं पाया। यह क्या पति-पत्नी लड़ रहे थे ? क्या करूँ समझ में नही आया। सोचने लगा, पति-पत्नी के झगड़े में मैं क्यों कान लगाऊँ ? दूसरे की गोपनीय बातें सुनने का मुझे क्या अधिकार है ?

फिर एक बार सोचा चला जाऊँ, परन्तु सुनने का लोभ भी हो रहा था। यह तो जानता था कि हमारे जैसे मध्यवित्त परिवारों में भी पति-

पत्नी का झगड़ा होता है, कुछ दिनों के लिए बोलचाल बंद हो जाती है। पर बड़े लोगों में ? तब तक बड़े लोगों को केवल दूर से ही देखा था। बड़ी-बड़ी मोटरों में पति-पत्नी को अगल-बगल बैठकर जाते देखा था। उनके कपड़े लत्ते, जेवर, हाव-भाव, चाल-चलन दूर से देखकर मन ही मन ईर्ष्या हुई थी। सोचता था उनके जीवन में शायद कोई समस्या नहीं है। जितना उन्हें देखता था, उतनी ही अपने ऊपर घृणा होती थी। सोचता था, उनमें हमारी तरह झगड़ा नहीं होता शायद। उनके जीवन में केवल सुख व स्वच्छन्दता है, केवल विलास और वैभव है। सड़क पर अकेले चलते हुए किसी बड़े आदमी के दुमंजिले-तिमंजिले मकान की खिड़की से कोई बहू दिखाई दे जाती तो अपनी पत्नी याद आ जाती। कैसा प्रशांत चेहरा—अनुपम रूप होता था उनका। भीगे बाल पीठ पर पड़े होते, पाप से रंगे होठ, चेहरा रँगा पुता। शायद खिड़की में खड़ी पति के लौटने की प्रतीक्षा करती होतीं। सोचता काश! अपनी पत्नी को भी अगर ऐसा घर दे पाता, ऐसे जेवर कपड़े दे पाता, ऐसा विलास और अवसर दे पाता! घर लौटकर देखता मैली साड़ी पहने पत्नी उसी तरह चौके चूल्हे में लगी होती। सुबह बिस्तर से उठने के बाद से रात को सोने तक उस काम का विराम नहीं था। कपड़े धोना, झाड़-पोंछ करना, खाना बनाना, बर्तन माँजना—बस काम और काम। दोनों बहनें, भाभी और पत्नी सभी काम कर करके परिश्रान्त हो जातीं, पर तब भी शांति नहीं मिलती, आराम नहीं मिलता। और इन लोगों को देखो, कैसे रहती हैं! कैसे गाड़ी में घूमने जाती हैं। चेहरा कैसा खिला रहता है!

तब तक बड़े लोगों के संबंध में यही धारणा थी। परन्तु अचानक सब जैसे गड़बड़ा गया।

कमरे में तब भी झगड़ा चल रहा था।

अचानक लड़की बोली, तुमने मेरे साथ ऐसा विश्वासघात किया ? भूल गये मैंने तुम्हारे लिये क्या किया था ?

आदमी बोला, नहीं, भूल कैसे जाऊँगा ! सचमुच तुमने मेरे लिये बहुत कुछ किया है जयन्तिया, सब याद है मुझे—सब कुछ।

—खाक याद है ! रुपये के लिये जब तुम्हारा कार-बार बंद हो रहा था, तब बाबूजी से कहकर मैंने तुम्हें पाँच हजार रुपये नहीं दिलवाये ?

तुम जब बीमार पड़े थे, दिन-रात दर्द से तड़पते थे, तब अपने खर्चे से इलाज कराकर किसने तुम्हारी जान बचाई थी ?

आदमी ने कोई जवाब नहीं दिया इसका।

लड़की फिर कहने लगी, जब भी तुम्हें रुपयों की जरूरत पड़ी मैंने सबसे छुपा-छुपाकर दिये तुम्हें। सब भूल गये ?

वह बोला, यही सब कहने के लिये तुमने मुझे यहाँ बुलाया था आज ?

लड़की गुर्राई, मेरे रुपयों से तुम दूसरी लड़की को जेवर घड़वाकर दो और मैं चुप बैठी रहूँ—क्यों ?

यह सुनते ही मैं और भी आश्चर्य में पड़ गया। कुछ भी समझ में नही आ रहा था। यह तो पति-पत्नी का सम्बन्ध नहीं था। पति-पत्नी का ऐसा सम्पर्क तो होता नहीं। कम से कम हम लोगों में तो नहीं ही था तथा किसी और समाज मे भी नही होना चाहिये था। लेकिन क्या पता, औरों की बात तो मालूम नहीं थी। बड़े लोगों को दूर से ही देखा था, उनके साथ घनिष्ठ होने का सुयोग तो मिला नहीं था कभी। उनके शयनकक्ष की बात तो दूर रही, कभी मकान के अन्दर भी पैर नहीं रक्खा था। वह लोग आपस में क्या बात करते थे, नहीं जानता था। सारे दिन के परिश्रम के बाद जब हम लोगों के यहाँ पति घर लौटता था तो पत्नी हाथ-मुँह धोने को पानी दे जाती और फिर चाय ले आती। पास बैठती और दिन भर के काम के बारे मे पूछती। कभी पूछती, आज इतनी देर हो गई आने में ? अथवा, खाना बन गया, ले आऊँ ?

परन्तु उन गृहस्थियों की बात अलग थी। विशेषकर जो बंगाली नही थे। वहाँ शायद पति-पत्नी का सम्बन्ध भी दूसरी तरह का था।

लेकिन तब तक असली बात कहाँ जान पाया था। कौन सरयू-प्रसाद था और कौन जयन्तिया थी—सरयूप्रसाद के साथ जयन्तिया का क्या सम्बन्ध था, यह भी नही पता था। क्यों सरयूप्रसाद उस मकान में आता था और क्यों जयन्तिया उसे बुला भेजती थी—सब एक पहेली-सा था। बस मैं तो खड़ा-खड़ा यही सोच रहा था कि यह कहाँ आ गया मैं। किस रहस्य से जुड़ गया—वहाँ से जा भी नही पा रहा था और वहाँ रहना भी उचित नही था। आप मेरी उस समय की हालत का अनुमान लगा सकते है। आज इस कमरे में बैठकर इतने

दिन बाद भी उस दिन की घटना की याद करके शरीर में सिहरन दौड़ जाती है। परन्तु उस दिन उस मकान से निकल भागने की भी क्षमता नहीं थी मुझमें। मुझे हर हालत में घनश्याम बाबू की गद्दी पर नौकरी करनी थी, न करने का कोई चारा नहीं था। नौकरी छूट जाने पर गृहस्थी का पहिया अचल हो जाता, मुझको, मेरी पत्नी को सारे परिवार को उपवास करना पड़ता।

इसलिये खाते बगल में दबाये उसी कमरे में चुप खड़ा रहा। दोनों पाँव थर-थर काँप रहे थे। कमरे के बाहर भी कोई दिखाई नहीं दे रहा था, जिससे कुछ पूछता।

क्या करूँ, क्या न करूँ, बड़ी विडम्बना में फँस गया था। सोचने लगा, अगर घर के सारे लोग शादी की दावत खाने गये है तो जयन्तिया क्यों नहीं गई? सरयूप्रसाद से मिलने के कारण? कौन है सरयूप्रसाद? किस कारण उसे जयन्तिया ने साँझ के झुटपुटे में बुलाया था?

आप सोच रहे होंगे कि मुझे सरयूप्रसाद का नाम कैसे पता चला। सचमुच, उसका नाम मैं तब तक नही जानता था। मैं तो यही समझ रहा था कि दोनों पति-पत्नी है और दाम्पत्य कलह हो रहा है। पत्नी शायद पति की स्वेच्छाचारिता के लिये अभियोग प्रकट कर रही है। परन्तु मैं उस समय वहाँ नहीं रहना चाहता था—बस डर की वजह से वहाँ से निकल जाना चाहता था। मालिक के घर लड़की-जमाई की बातों में पड़ना अन्याय है। किसी को पता चल गया तो नौकरी चली जाने का डर है।

अचानक कमरे में झगड़े ने और भयंकर रूप ले लिया।

आदमी बोला, तुम क्या चाहती हो कि मैं तुम्हारे कहने पर ही चलूँ?

लड़की ने कहा, हाँ, तुम्हें मेरे कहने पर चलना पड़ेगा।

—कभी नही।

—मेरी बात नहीं मानोगे तो नतीजा बहुत बुरा होगा।

—मुझे डरा रही हो?

—मुझे ऐसी लड़की मत समझ लेना जो तुम्हारी हर बात मान ले।

—मैं भी तुम्हरी हर बात नहीं मान सकता।

—नहीं मानोगे? जरूर मानोगे। माननी ही पड़ेगी तुम्हें। तुम समझते हो कि मैं तुम्हारी यह सब बातें बर्दाश्त कर लूंगी?

रहा था। सोचने लगा कि कहीं उल्टे रास्ते चलकर और अंदर न पहुँच जाऊँ—फिर तो और मुसीबत में पड़ जाऊँगा।

धीरे-धीरे फिर उसी कमरे की तरफ लौट आया, जिससे निकला था। कमरे में तब भी बत्ती जल रही थी, मेरे जाने के बाद शायद कोई नहीं आया था वहाँ। हताश होकर फिर चारों ओर देखने लगा, शायद कोई दिखाई दे जाये, पर व्यर्थ। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता जैसे अँधेरे में कोई एक ओर से निकल कर दूसरी ओर चला गया, पर जोर से पुकारने की हिम्मत नहीं पड़ती।

अंत में फिर चल पड़ा। बरामदे में चलते-चलते एक जगह पहुँचा तो आगे रास्ता बंद था, बस सर पर एक लट्टू टिमटिमा रहा था।

सोचने लगा, क्या आश्चर्य है! इतने बड़े आदमी का मकान है, क्या किसी को नहीं होना चाहिये! सारे के सारे दावत खाने चले गये? नौकर-चाकर भी आरती में चले गये। अगर चोर-डाकू आ जायें तो। और घनश्याम बाबू तो बीमार हैं, वह कहाँ चले गये? उनकी सेवा-शुश्रूषा के लिये भी दो-चार आदमी होने चाहिये?

आज अपने उस दुखी जीवन की बातें सुनाकर शायद आपको उबा रहा हूँ। लेकिन आपको सुनाकर मैं जैसे फिर अपने उसी जीवन में लौट गया हूँ। भले ही वह जीवन सुखी नहीं था, कष्ट के दिन थे। परन्तु अतीत का शायद एक मोह होता है और ज्यों-ज्यों उमर बढ़ती है, वह मोह बढ़ता जाता है। आप भी बूढ़े हो गये है, आप भी अवश्य समझते होंगे। नहीं तो आपको रास्ते से बुलाकर क्यो अपनी रामकहानी सुनाने बैठ जाता।

पिताजी ने कहा, नहीं नहीं, आप सुनाइये, मुझे अच्छा लग रहा है।

तिनकड़िबाबू बोले, अच्छा नही लगे तब भी आप लोगों को सुनाऊँगा ही—हर आदमी तो समझता नहीं! और सबको सब कुछ बताया भी नहीं जा सकता, आप प्रवीण चिकित्सक है, एक चिकित्सक की व्यथा समझ सकेंगे।

पिताजी ने कहा, पर आप चिकित्सक बने कैसे?

—वही तो बताने जा रहा हूँ। उस दिन घनश्याम बाबू बीमार न पड़ते और मैं वह खाते लेकर उनके घर नही जाता तो मेरा चिकित्सक बनना भी संभव नहीं होता और इस ऐश्वर्य-सम्पदा का मालिक नहीं बनता। दो लड़के हैं मेरे, दोनों ऊँचे वेतन पर पंचकोट स्टेट में नौकरी

करते हैं—पंचकोट के राजा ने स्वयं बुलाकर नौकरी दी है उन्हें। सब उस रात की घटना की वजह से हुआ।

मनुष्य के बारे में उससे पहले मुझे कोई अभिज्ञता नहीं थी। आँखों से जो दिखाई देता, उसी को सत्य मानकर विश्वास कर लेता। परन्तु दृष्टि की ओट में एक और संसार है, उसके कायदे कानून बिल्कुल अलग हैं, वह भले ही आँखों से न दिखाई देते हों, पर वह सब सत्य हैं इसमें भी कोई सन्देह नहीं! बड़े लोगों को मैं जिस दृष्टि से देखता था, उस घटना के बाद वह पूरी तरह बदल गई।

याद है, उस दिन अदालत में अपार भीड़ थी। नजरें उठाकर देखने में भी मुझे शर्म आ रही थी। मुलजिम के कटघरे में खड़ा थर-थर कांप रहा था मैं।

उनके वकील ने पूछा था, तुम घनश्याम बाबू के मकान में न घुस कर बगल के मकान में क्या जानबूझ कर घुसे थे?

काँपते हुए मैंने कहा था, मुझे पता होता तो उस मकान में नहीं घुसता।

—तुमने सरयूप्रसाद से कभी रुपये उधार लिये थे?

मैंने कहा था, मैंने तो सरयूप्रसाद का नाम भी कभी नहीं सुना—उसे देखना या रुपये उधार लेना तो दूर की बात है।

—कितने रुपये महीना मिलते है तुम्हें यह घनश्याम बाबू की गद्दी पर?

—सात रुपये।

—सात रुपये में तुम्हारा पूरा कैसे पड़ता है? जरूर उधार लेना पड़ता होगा?

—भैया भी नौकरी करते है, दोनों मिलकर गुजर-बसर कर लेते है।

—कभी बड़ा आदमी बनने का जी नहीं चाहा तुम्हारा? बड़े आदमियों की तरह गाड़ी में बैठने की इच्छा नहीं हुई तुम्हारी?

—हुई है, पर भगवान के भरोसे जिंदा हूँ, वह देंगे तो बड़ा आदमी बन जाऊँगा।

—साहस होता तो बन सकते थे?

अब इस प्रश्न का क्या जवाब देता भला! साहस होता तो सभी

रहा था। सोचने लगा कि कहीं उल्टे
जाऊँ—फिर तो और मुसीबत में पड़
धीरे-धीरे फिर उसी कमरे की
था। कमरे में तब भी बत्ती जल रही
नहीं आया था वहाँ। हताश होकर फि
कोई दिखाई दे जाये, पर व्यर्थ। कभी-
में कोई एक ओर से निकल कर दूसरे
पुकारने की हिम्मत नही पड़ती।

अंत में फिर चल पड़ा। बरामदे में
तो आगे रास्ता बंद था, बस सर पर ए

सोचने लगा, क्या आश्चर्य है! इतने
किसी को नही होना चाहिये! सारे के
नौकर-चाकर भी आरती में चले गये। अग
और घनश्याम बाबू तो बीमार हैं, वह कह
शुश्रूषा के लिये भी दो-चार आदमी होने चाहि

आज अपने उस दुखी जीवन की बातें सु
रहा हूँ। लेकिन आपको सुनाकर मैं जैसे फिर
गया हूँ। भले ही वह जीवन सुखी नहीं था, क
अतीत का शायद एक मोह होता है और ज्यों-ज्य
मोह बढ़ता जाता है। आप भी बूढ़े हो गये है, आ
होंगे। नहीं तो आपको रास्ते से बुलाकर क्यों अपने
बैठ जाता।

पिताजी ने कहा, नहीं नहीं, आप सुनाइये, मुझे अ

तिनकड़िबाबू बोले, अच्छा नहीं लगे तब भी आप
ऊँगा ही—हर आदमी तो समझता नहीं! और सबको
भी नहीं जा सकता, आप प्रवीण चिकित्सक हैं, एक चिकि
समझ सकेंगे।

पिताजी ने कहा, पर आप चिकित्सक बने कैसे?

—वही तो बताने जा रहा हूँ। उस दिन घनश्याम बाबू
पड़ते और मैं वह खाते लेकर उनके घर नही जाता तो मेरा
बनना भी संभव नहीं होता और इस ऐश्वर्य-सम्पदा का मालि
बनता। दो लड़के हैं मेरे, दोनों ऊँचे वेतन पर पंचकोट स्टेट में

—सरयूप्रसाद मेरा महाजन नहीं था।

इससे ज्यादा कानूनी तर्क-वितर्क सुनाकर मैं आपको और परेशान नहीं करूँगा। यह तो बाद की घटना है। परन्तु जीवन में भले ही कोई घटना बाद को घटित हो, उसका बीज तो पहले ही बोया जाता है। मुझसे मेरे भाग्यविधाता कब क्या खेल खेलेंगे, उसका नक्शा तो उन्होंने पहले ही तैयार कर लिया था और यह बात पहले कोई कैसे जान सकता था। इसीलिये मनुष्य अचानक किसी विपत्ति के आ पड़ने पर हक्का-बक्का रह जाता है, विचलित हो जाता है। लेकिन उस दिन यह भी कहाँ पता था कि वह रात आगे जाकर एक दिन फलीभूत होगी; उस विपत्ति से भी एक दिन छुटकारा मिल जायेगा। उस दिन तो यही लगा था कि अब जीवन भर मुक्ति नहीं होगी!

चलिये, बाद की बात बाद को ही कहूँगा। अभी तो उसी रात की बात बताऊँ।

फिर उसी कमरे में आकर खड़ा हो गया। सोचा, जिनकी आवाजें सुनाई दे रही है, उनमें से किसी न किसी की नजर तो पड़ेगी मुझ पर —उसी से पूछ लूँगा।

खड़े होते ही अचानक एक दबी कराह सुनाई दी और फिर धीरे-धीरे रुक गई। ऐसा लगा जैसे सारा मकान अचानक मूच्छित हो गया हो। उस मन्द प्रकाशित कमरे में उसी तरह काफी देर खड़ा रहा मैं, सिर घूमने लगा, क्या हुआ भीतर। अब तक तो झगड़ा चल रहा था —इस तरह अचानक रुक कैसे गया!

अचानक कमरे के अन्दर का एक दरवाजा धड़ाम से खुला और अन्दर से एक लड़की निकली।

मैं मुंह बाये आश्चर्यचकित देखता रह गया। लड़की की भयभीत आँखें मुझे देखकर एकदम से चमक उठीं।

—कौन?

मुझे ऐसा लगा, जैसे लड़की की आँखों में मोटा-मोटा सुरमा लगा था या किसी ने कालिख पोत दी थी। गोरा-चिट्टा रंग था। असल में उस रंग की व्याख्या करना मुश्किल है—पके आम का जो एक रंग होता है, जो न पीला होता है न लाल और न सफेद। तीनों को मिलाकर जो रंग बनता है—ठीक वैसा ही था। जितनी तरह के जेवर पहने थी वह, उन सबके तो मैं नाम भी नहीं जानता। अंग-अंग सोने से मढ़ा

कुछ कर सकता था। साहस होता तो सात रुपये महीने की नौकरी क्यों करता!

और सोच रहे होंगे कि बीच में कोर्ट का मामला कहाँ से आ गया—और मैं मुलजिम क्यों बना ?

भैया ने भी यही सोचा था। और सिर्फ भैया ने ही नही, वरन् सारे परिचित व सगे-संबंधियों ने भी यही बात सोची थी। जीवन भर नौकरी करता रहूँ और शान्त शिष्ट व्यक्ति की तरह महीने के अंत में वेतन लाकर घर पर दे दूँ यही जीवन का आदर्श है। ऐसे आदमी का ही सब सम्मान करते हैं, प्रशंसा करते हैं! ऐसे आदमी को ही लोग जमाई बनाना चाहते हैं। पर खून का मुलज़िम ?

वकील ने आगे पूछा था, सरयूप्रसाद का पीछा तुमने कहाँ से किया था ?

—मैंने उसका पीछा नहीं किया था।

—तो फिर इतने मकानों के होते हुए, घनश्याम बाबू का मकान बगल में होते हुए, उसके पीछे-पीछे जयन्तिया के मकान में क्यों घुसे थे ?

मैंने कहा था, मैं उसके पीछे-पीछे नहीं गया था।

तो फिर बाहर का आँगन पार करके अन्तःपुर में कैसे पहुँच गये थे ?

—गलती से।

—अच्छा मान लिया कि गलती से पहुँच गये थे, परन्तु यह कैसे पता चला कि घर के सब लोग दावत खाने गये थे ?

—पहले नही पता था। दो जनों की बातों से पता चला था।

—तो तुमने शायद तय कर लिया कि सरयूप्रसाद से बदला लेने का सुनहरा मौका था ?

—आप क्या कह रहे हैं, मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा।

—मैं समझा देता हूँ। तुम्हारा वास्तविक उद्देश्य था, सरयूप्रसाद से बदला लेना, इसीलिये संदेह से बचने के लिये तुम घनश्याम बाबू की गद्दी के खाते लेकर उस मकान में गये थे—क्यों ठीक है न ?

मैंने कहा—मुझे पंडित जी ने घनश्याम बाबू के घर जाने को कहा था, इसलिये गया था—और कोई उद्देश्य नहीं था मेरा।

—लेकिन तुम्हें यह कैसे पता चला था कि तुम्हारा महाजन सरयूप्रसाद भी उसी समय उस मकान में आयेगा ?

—सरयूप्रसाद मेरा महाजन नहीं था।

इससे ज्यादा कानूनी तर्क-वितर्क सुनाकर मैं आपको और परेशान नहीं करूँगा। यह तो बाद की घटना है। परन्तु जीवन में भले ही कोई घटना बाद को घटित हो, उसका बीज तो पहले ही बोया जाता है। मुझसे मेरे भाग्यविधाता कब क्या खेल खेलेंगे, उसका नक्शा तो उन्होंने पहले ही तैयार कर लिया था और यह बात पहले कोई कैसे जान सकता था। इसीलिये मनुष्य अचानक किसी विपत्ति के आ पड़ने पर हक्का-बक्का रह जाता है, विचलित हो जाता है। लेकिन उस दिन यह भी कहाँ पता था कि वह रात आगे जाकर एक दिन फलीभूत होगी; उस विपत्ति से भी एक दिन छुटकारा मिल जायेगा। उस दिन तो यही लगा था कि अब जीवन भर मुक्ति नही होगी!

चलिये, बाद की बात बाद को ही कहूँगा। अभी तो उसी रात की बात बताऊँ।

फिर उसी कमरे में आकर खड़ा हो गया। सोचा, जिनकी आवाजें सुनाई दे रही है, उनमें से किसी न किसी की नजर तो पड़ेगी मुझ पर —उसी से पूछ लूँगा।

खड़े होते ही अचानक एक दबी कराह सुनाई दी और फिर धीरे-धीरे रुक गई। ऐसा लगा जैसे सारा मकान अचानक मूर्च्छित हो गया हो। उस मन्द प्रकाशित कमरे में उसी तरह काफी देर खड़ा रहा मैं, सिर घूमने लगा, क्या हुआ भीतर। अब तक तो झगड़ा चल रहा था —इस तरह अचानक रुक कैसे गया!

अचानक कमरे के अन्दर का एक दरवाजा धड़ाम से खुला और अन्दर से एक लड़की निकली।

मैं मुँह बाये आश्चर्यचकित देखता रह गया। लड़की की भयभीत आँखें मुझे देखकर एकदम से चमक उठीं।

—कौन?

मुझे ऐसा लगा, जैसे लड़की की आँखों में मोटा-मोटा सुरमा लगा था या किसी ने कालिख पोत दी थी। गोरा-चिट्टा रंग था। असल में उस रंग की व्याख्या करना मुश्किल है—पके आम का जो एक रंग होता है, जो न पीला होता है न लाल और न सफेद। तीनों को मिलाकर जो रंग बनता है—ठीक वैसा ही था। जितनी तरह के जेवर पहने थी वह, उन सबके तो मैं नाम भी नहीं जानता। अंग-अंग सोने से मढ़ा

हुआ था। गरीब होते हुए भी दूर से बहुत सी बड़े घर की औरतों को देखा था, परन्तु उससे पहले वैसा रंग और उतने गहने कभी नहीं देखे थे। ऐसा लग रहा था जैसे इतनी देर से झगड़ने के कारण वह बहुत क्लांत हो गई थी और मुझे वहाँ देखकर चौंक गई थी। सोचा, उसका चौंकना तो स्वाभाविक ही है। एकदम शयनकक्ष के पास एक अनजान-अपरिचित आदमी को देखकर तो हर औरत चौंक जाती है। इसमें उसका क्या दोष है, बरन् दोषी तो मैं हूँ—मैं ही तो बिना कहे वहाँ चला आया था।

—कौन ? कौन है ? कौन हैं आप ?

कुछ देर के लिये तो जैसे मेरी जुबान पर ताला पड़ गया, आवाज ही नहीं निकली। मेरे मन में आया कि अगर कोई आदमी उस वक्त आ जाये और मुझे उस अवस्था में देख ले तो क्या होगा। क्या कैफियत दूँगा उसे ? इतनी देर से जिस पुरुष की आवाज सुन रहा था, वही अगर बाहर आकर दरवान को बुला ले तो। मैं गद्दी के काम से घनश्याम बाबू के पास आया था, यह बात कौन मानेगा। सोचेगा, जरूर मेरा कोई और इरादा था। नहीं तो इतनी अन्दर क्यों आता। पूजाघर मे इतने लोगों के रहते किसी से पूछा क्यों नहीं। वह लोग या तो मुझे गर्दनिया देकर निकाल देगे या पुलिस के हवाले कर देंगे। अब तो बस घनश्याम बाबू ही मुझे बचा सकते हैं। लेकिन अगर उन्होंने भी मेरी बात पर विश्वास नहीं किया तो ?

लड़की मुझे एकटक घूर रही थी।

बहुत मुश्किल से कहा, मैं घनश्याम बाबू से मिलने आया हूँ।

—कौन घनश्याम बाबू ?

चक्कर मे पड़ गया मैं, और भी भयभीत हो गया। घनश्याम बाबू का तो नाम ही यथेष्ट था। वह शायद उन्ही की लड़की थी। पर तब भी नही पहचान पा रही थी।

बोला, दर्माहाट में जिन घनश्याम बाबू की गद्दी है—

अचानक लड़की ने स्वयं को संभाल लिया जैसे। क्षण भर में ही उसके चेहरे के भाव बदल गये। ऐसा लगा जैसे चेहरा और लाल हो गया—शायद अब पहचान गई थी, समझ गई थी कि मैं बिल्कुल अनाहूत नही था। मुझसे डरकर भाग जाने की जरूरत नहीं थी, विश्वास किया जा सकता था मुझ पर।

मैंने फिर कहा, घनश्याम बाबू के पास ही आया हूँ—इन खातों पर दस्तखत कराने।

वह बोली, ओ····बैठिये आप।

बैठने की हालत नहीं थी मेरी उस समय। इतना साहस नहीं रह गया था, पाँव दर्द से टीस रहे थे। बैठने से चैन नहीं मिलता, पर बैठा नहीं।

बोला, घनश्याम बाबू का कमरा दिखा दीजिये।

लड़की हँस पड़ी। बड़ा अच्छा लगा उसका हँसना।

बोला, हँस क्यों रही हैं आप।

सच तो यह है कि उसके मुँह पर हँसी देखकर जरा आश्वस्त हो गया था मैं। वैसे स्वागत की आशा नहीं थी मुझे। इतने बड़े आदमी की लड़की मुझसे हँस कर बात करेगी, यह तो सोचा भी नहीं जा सकता था।

फिर सफाई देते हुए कहा, बाहर लोगों से पूछने पर उन्होंने अन्दर जाने को कहा था।

उसने पूछा, कितनी देर हो गई आपको आये ?

—बहुत देर।

—बहुत देर ?

बोला, हाँ बहुत देर हो गई। घर मे शायद कोई नहीं था उस समय, इसलिये दिखाई नही दिया कोई। जीना चढ़कर इधर-उधर घूमते-घूमते इस कमरे में बत्ती जलती दिखाई दी तो अन्दर चला आया था।

जाने क्या सोचा उसने ? बोली, कितनी देर हुई होगी आये—आधा घण्टा ?

मैंने कहा, हाँ होगा—हो सकता है उससे ज्यादा हो।

—हम लोग कमरे में बातें कर रहे थे, वह सुनी थीं आपने ?

—हाँ सुनी थी।

यह सुनते ही लड़की का मुँह पीला पड़ गया। चौक उठी हो जैसे मेरी बात सुनकर, डर गई हो।

फिर पूछा, क्या सुना था आपने ?

मैंने कहा, यह तो नहीं मालूम—आप लोग बातें कर रहे थे और मैं सोच रहा था कि आप लोगों में से कोई दिखाई दे जाये तो अच्छा हो।

—आप चुप खड़े रहे ? बुलाया क्यों नहीं ?

—डर लग रहा था।

—हम लोगों की बातें सुनकर डर लग रहा था ?

—नहीं।

—तो फिर।

—सोच रहा था, बाहरी आदमी होकर एकदम अन्दर आ गया था।

—किसने आने दिया आपको अन्दर ?

—कोई भी सामने तो नहीं था—एक दो जने मिले थे, उनसे पूछा था, उन्होंने अन्दर जाने को कहा।

—बाहर का जीना नहीं मिला था ?

—अँधेरे में बाहर अन्दर का अन्दाजा नहीं लगा पाया।

—इसीलिये सीधे अन्दर चले आये ?

—मुझे पता नही था, माफ कर दीजिये।

—क्या पता नहीं था ? कहाँ रहते हैं आप ? कहाँ नौकरी करते हैं यहाँ क्या करने आये हैं ?

एक साथ इतने प्रश्न सुनकर और डर गया मैं। अगर इसने चिल्ला कर दरवान को बुला लिया और थाने भेज दिया तो क्या होगा। घर-वाले रात भर परेशान होंगे। फिर कचहरी-मुकदमा कौन करेगा। रुपया कहाँ से आयेगा। बदनामी होगी सो अलग। किसी को मुँह दिखाने लायक नही रहूँगा। हम जैसे गरीबों की सम्पदा एक आत्म-सम्मान ही तो होता है, वह भी चला जायेगा। फिर तो बस गले में फाँसी लगाने के अलावा कोई चारा नहीं रहेगा।

लड़की ने धमकाने के स्वर में पूछा फिर—बताइये, कहाँ रहते हैं आप ? कहाँ नौकरी करते हैं।

कहा, घनश्याम बाबू की गद्दी पर।

वह बोली, घनश्याम बाबू की गद्दी पर काम करते है तो यहाँ क्यों आये ? किस इरादे से आये ?

एकदम सकपका गया मैं। बोला, यह घनश्याम बाबू का घर नहीं है।

मैं सचमुच विभ्रम में पड़ गया था। सोचने लगा था। तो फिर कहाँ आ गया मैं ? पंडित जी ने तो यही पता बताया था। अन्दर आने से पहले नम्बर तो देखा था, वही था। हाँ, अँधेरे मे ठीक से दिखाई

नहीं दिया था, पर तब भी लगा तो यही था। कॉटन स्ट्रीट पर पहुँचते ही नम्बर देखता आया था। लाल रंग का मकान, पचहत्तर बटे दो नम्बर। चार मंजिला, सामने छज्जे पर सफेद और हरे रंग की रेलिंग। गलती की तो कोई गुंजाइश थी नही।

भय से जड़ हो गया मैं। ऐसे लगने लगा, जैसे अभी चक्कर खाकर गिर जाऊँगा।

फिर पूछा, घनश्याम बाबू का मकान नहो है यह ?

वह बोली, नहीं।

तो इसका मतलब है मैंने गलती की। पर कौन मेरा विश्वास करेगा। सब यही कहेंगे कि जान बूझकर मैं इस मकान में घुसा था।

साहस जुटाकर बोला, तो फिर उनका मकान कहाँ है ?

—मुझे नहीं मालूम।

यह सुनते ही सर पर पाँव रख कर भाग जाने को जी चाहा, लेकिन भागने का रास्ता भी तो नहीं था।

उसने पूछा, आपका नाम क्या है।

नाम बताया।

—कब आये आप ?

—बहुत देर हो गई। बहुत देर से आप लोगों की बातें मैं सुन रहा था।

—क्या-क्या सुना ?

—सारी बातें तो समझ में नहीं आईं। आप दोनों बातें कर रहे थे, एक-दूसरे को डाँट रहे थे।

—यह डाँट-फटकार क्यों हो रही थी, कुछ समझ में आया ?

—मैं कैसे समझता। मैं तो आपलोगों को जानता नहीं। जानता होता तो समझता भी।

—दूसरे के घर में घुसकर दूसरों की बातें सुनने में शर्म नहीं आती आपको ?

—मैं तो अनजाने में चला आया था। मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम था।

—पर आपने आवाज क्यों नहीं दी ?

—आप लोगों को जानता नहीं था, इसलिये समझ नहीं पा रहा था कि किसको आवाज दूँ।

—दरबान को क्यों नहीं बुलाया ? वह तो नीचे ही था।

—बुलाने को सोचा तो था—पर—

—पर क्या ?

रास्ता भूल गया था। नीचे जाने का रास्ता नहीं मिल रहा था, बहुत घूमा इधर-उधर, फिर हार कर इसी कमरे में आ गया।

—फिर से इसी कमरे में घुसने में आपको डर नहीं लगा ?

—लेकिन आप ही बताइये, मेरे पास और उपाय भी क्या था ? एक इसी कमरे में बत्ती जल रही थी, लोगों की बातचीत सुनाई दे रही थी।

—हम लोगों की कितनी बातचीत सुनी आपने ?

—जितनी कानों में पहुँचती रही सुनता रहा। मेरे मन में तो बस एक ही बात चक्कर काट रही थी कि अगर किसी से सामना हो जाता तो अच्छा होता। मैं तो बस उसी के लिये छटपटा रहा था बस।

—इस पर भी आपने किसी को भी आवाज क्यों नहीं दी ?

मैंने कहा न कि हिम्मत नही पड़ी। और फिर बुलाता भी किसको किसी को भी तो नही पहचानता था।

—और अगर मैं कहूँ कि आप जान बूझकर इस कमरे में घुसे थे !

निरीह स्वर में मैंने कहा, जान बूझकर घुसने का साहस कहाँ से लाता मैं। मैं ठहरा एक गरीब सात रुपये महीने का नौकर, जो हरवक्त मालिक का मुँह ही ताकता रहता है।

कहते-कहते शायद मेरी आँखों में आँसू आ गये थे। लड़की तेज-तर्रार थी, कुछ भी कर सकती थी। हाथ जोड़कर बोला, अब दया करके मुझे जाने दीजिये।

लड़की की आँखें जल उठीं एकदम।

बोली, नहीं।

और भयभीत हो गया मैं।

उसने पूछा, कहाँ रहते हैं ?

—भवानीपुर में चाउलपटि में—बहुत दूर है यहाँ से। पैदल जाना पड़ेगा।

—क्यों ? पैदल क्यों जाना पड़ेगा ?

—ट्राम में जाने में बहुत पैसे लगते हैं !

—व्यंग भरे स्वर में बोली वह, पैसे नहीं है पर हिम्मत तो बहुत है !

फिर विद्रूप से उसका चेहरा विकृत हो गया। डाँटते हुए कहने लगी, इतने बड़े मकान में जहाँ पचासों आदमी भरे पड़े हैं, तुम बिना किसी से पूछे-ताछें घुस आये ? बेअदब, बदतमीज, बेवकूफ कही के !

उसकी भर्त्सना सिर नत किये सुनता रहा। क्या प्रतिवाद करता। उत्तर था ही क्या देने को ! मेरे तो सिर पर जूते भी पड़ते तो कहने को कुछ नहो था। सिर झुकाये खड़ा रहा बस।

वह कहती रही, शर्म नहो आती किसी के यहाँ दनदनाते हुए सीधे अंदर तक चले आते। शर्म नहीं आती औरतों के हिस्से में घुसकर छुप कर उनकी बातें सुनते।

मै फिर हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाया, दया कीजिये मुझ पर, जाने दीजिये मुझे। मैंने तो बताया कि अनजाने में चला आया।

वह बोली, नहीं कभी नहीं जाने दूँगी।

मैंने पुनः छोड़ देने की विनती की पर उसने एक नहीं सुनी तो मैंने भी जरा हिम्मत की और कहा, क्यों बुरा भला कह रही हैं, बुला लीजिये किसको बुलाना है। मैं भी सब कुछ खोलकर बता दूँगा।

बड़ी मारात्मक अवस्था हो गई थी मेरी।

फिर बोला, कोई अन्याय नहीं किया मैंने। क्या करियेगा आप !

वह गुर्राई—अच्छा चोरी और सीना जोरी। अभी दिखाती हूँ, क्या करूँगी।

मैंने कहा, मुझे आज हर हालत में घनश्याम बाबू से मिलना है।

उसने कहा, यह घनश्याम बाबू का घर नहो है।

तो फिर मैं वहीं चला जाऊँगा, जाने दीजिये।

वह झट से मेरे सामने आकर दोनों हाथों से रास्ता रोककर बोली, देखती हूँ, कैसे जाते हो तुम—

मैंने फिर विनती की—मैंने क्या बिगाड़ा है आपका, जो आप ऐसे कर रही हैं ? न मैंने कुछ कहा और ना ही कोई अपराध किया। अब मैं आपको कोई बात नहीं सुनना चाहता, छोड़ दीजिये मुझे। अब कुछ नहो कहना-सुनना मुझे।

मैंने इतना कहा था कि उसके सिर पर न जाने क्या भूत सवार हुआ कि तड़ाक से एक चाँटा जड़ दिया मेरे गाल पर। सर भन्ना गया मेरा।

लड़की का मुँह गुस्से से लाल हो गया, आँखों से आग बरसने लगी। बोली, मेरे मुँह पर जुबान लड़ा रहे हो, बैठो वहाँ चुपचाप।

पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गया मैं। आँखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। क्या करूँ? किसे बुलाऊँ? कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

बैठते ही कसकर एक और चाँटा उसने दूसरे गाल पर मारा।

दूसरा चाँटा पड़ते ही मैं लुढ़कने को हुआ कि उसने पकड़कर झकझोर दिया। एक तरह से अच्छा ही हुआ, अगर गिर जाता तो चश्मा गिरकर चूर-चूर हो जाता और एक और नई मुसीबत खड़ी हो जाती।

बोली, ठीक से बैठो।

कुछ कहना चाहा पर मुँह ही नही खुला। दोनों गाल चस-चस कर रहे थे। चेतना जैसे लुप्त होती जा रही थी। सिर घूम रहा था।

सोचने लगा, अब शायद वह किसी को बुला कर मुझे पुलिस को पकड़वा देगी। घनश्याम बाबू से मिलना नहो हो सकेगा। इतनी देर हो जाने पर भी खाते न मिलने के कारण उन्होंने अवश्य गद्दी पर फोन किया होगा और कुछ खबर न मिलने के कारण सब पर गुस्सा हो रहे होंगे!

उधर घर पर भी सब फिक्र कर रहे होंगे। भैया देर होते देख गली के मोड़ तक चक्कर लगा आये होंगे और सड़क पर दूर तक कहीं मेरा नाम-निशान न देखकर, लौटकर पत्नी से पुछवाया होगा कि आज मैं देर से आने को कहकर गया था क्या?

पत्नी ने कोई उत्तर न देकर सिर हिला दिया होगा बस। बड़ी अल्पभाषी है वह। कोई उसके मन की बात नही जान पायेगा। और उस बेचारी को क्या पता कि मैं यहाँ किस मुसीबत में पड़ा हुआ हूँ। मुझे भी कहाँ पता था कि मुझे छुट्टी मिलने पर यहाँ आना पड़ेगा जो उससे कुछ कहकर आता।

लड़की ने पूछा, कौन-कौन है तुम्हारे घर पर?

कहा, सभी हैं।

—पत्नी है?

—है।

—बच्चे?

—अभी नहीं हुए।

—पिता?

—नहीं। लेकिन विवाह योग्य दो बहनें हैं, भैया हैं, भाभी हैं—उन लोगों को बड़ी चिंता हो रही होगी। अब तो छोड़ दीजिये ! दया कीजिये !

अबकी बार मैं सीधे उसकी ओर देखकर बातें कर रहा था। अच्छी तरह देखा—कीमती साड़ी पहने थी, गहने उस मंद प्रकाश में भी झलमल कर रहे थे। पीठ पर लम्बी चोटी लटक रही थी। मुँह गुस्से से लाल हो गया था।

अचानक बाहर किसी के कदमों की आहट सुनाई दी।

लड़की एकदम से चौंकी। पर पल में उसके चेहरे का रंग बदल गया। झट से लपककर उसने दरवाजा बंद कर दिया और बिना आवाज किये चिटकिनी बंद कर दी। फिर वहीं खड़े होकर दरवाजे से कान लगाकर सुनने लगी। काफी देर उसी तरह खड़ी रही।

उसके बाद पता नहीं कौन दरवाजे को खोलने के लिये धक्का मारने लगा। फिर कुंडी बजाने लगा।

कौन बुला रहा है बाहर ? यह कहने को जैसे मैंने मुँह खोला, उसने झट से मुँह पर हाथ रख दिया और इशारे से बोली, चुप।

अब और चक्कर में पड़ गया मैं। शुरू से ही सब कुछ रहस्यमय लग रहा था मुझे। कौन है यह लड़की ! नाम तो अन्दर होने वाली बातों से जान गया था—जयन्तिया था। लेकिन इस घर की थी कौन ? इतनी देर से सरयूप्रसाद से लड़ क्यों रही थी ! और लड़ते-लड़ते अचानक वह लड़ाई बंद क्यों हो गई थी ? सरयूप्रसाद कौन था ? अब कहाँ चला गया था वह ? कमरे में अकेला चुप क्यों बैठा था ? बाहर क्यों नहीं आ रहा था ? हम लोगों की बातें सुन रहा था क्या वह ? दिमाग भन्नाने लगा।

बाहर कोई अनवरत कुंडी खटखटाये जा रहा था।

वह मेरा मुँह जोर से दबाये हुए थी, ताकि मैं बोल न सकूँ। बहुत निकट आ गई थी वह। उसने शायद इत्र लगा रक्खा था, नशा सा छाने लगा था मुझ पर। तबियत हो रही थी कि उसी तरह वह मेरा मुँह दबाये रहे। एक भिन्न अनुभूति हो रही थी मुझे। मेरा सारा डर काफूर हो गया था। मुसीबत में घिरने की बात भूल गया था, घनश्याम बाबू के पास खाते पहुँचाने की बात भी दिमाग से निकल गई थी, घरवालों का ख्याल भी नहीं रहा था, बस तन्द्राच्छन्न हो गया था। उसके

हाथ में शायद रक्त-सा लाल आलता लगा हुआ था, जिसका रंग मेरे मुँह, गले व हाथ पर लग गया था। मैंने एक हाथ से उसका हाथ हटाना चाहा पर उसने अपनी पकड़ और मजबूत कर ली। इतनी ताकत थी उसमें कि मेरा दम घुटने लगा।

कुछ देर बाद कुंडी खटखटाने की आवाज बंद हो गई। खटखटाने वाला शायद चला गया था।

उसके बाद भी कई मिनट तक जयन्तिया उसी प्रकार मेरा मुँह दबाये खड़ी रही, फिर अपना हाथ हटा लिया उसने।

लेकिन ओठों पर उँगली रखकर चुप रहने का इशारा किया।

मुझे भी कुछ कहने का साहस नहीं हुआ।

दरवाजे के पास जाकर उसने फिर से कान लगा दिये। लेकिन कोई आवाज सुनाई न देने पर मेरे कान के पास मुँह लाकर फुसफुसाई, चुप बैठे रहो यहीं, मैं अभी आती हूँ।

कहकर फिर से दरवाजे पर कान लगाकर आहट ली और फिर बिना आवाज किये दरवाजा खोलकर बाहर निकल गई।

जाते समय मेरी ओर घूमकर कह गई, दरवाजा बंद कर लो।

मेरी भी क्या बुद्धि भ्रष्ट हुई कि दरवाजा बंद करके चिटकिनी लगा दी और वापस आकर कुर्सी पर बैठ गया।

बहुत देर अपने में खोया बैठा रहा। क्या करूँ तय नहीं कर पा रहा था। जयन्तिया के लौटने तक तो बैठना ही था। परन्तु फिर ऐसा लगने लगा कि वह आने में बहुत देर लगा रही थी। रात बीती जा रही थी।

जरा देर बाद बेचैनी होने लगी। उठकर खड़ा हो गया। शशोपंज में पड़ गया कि दरवाजा खोलूँ या नहीं।

अंदर वाला दरवाजा अभी भी बंद था। एकदम से सरयूप्रसाद का ख्याल आ गया। क्या कर रहा था वह ? चुप क्यों बैठा है, बोल क्यों नहीं रहा ?

इतने में बाहर से किसी ने कुंडी खटखटाई।

जान में जान आई मेरी कि चलो जयन्तिया आ गई !

पर दरवाजा खोलते ही भौंचक्का रह गया। जयन्तिया नहीं, कोई और था। लंबा-चौड़ा आदमी।

मुझे देखकर वह भी जैसे आश्चर्य में पड़ गया।

उसने पूछा, कौन है आप ?

मैंने कहा, मैं घनश्याम बाबू की गद्दी का आदमी हूँ ।

—घनश्याम बाबू ? वह तो बगल के मकान में रहते हैं, इसमें नहीं ।

—वहीं जाना है, इस मकान में गलती से घुस आया । पहले कभी नहीं आया, नया आदमी हूँ ।

आदमी ने आपादमस्तक मेरा निरीक्षण करके बोला, इस कमरे मे कौन लाया आपको ?

—मैं खुद ही आया हूँ । बाहर सदर ड्योढ़ी में जिससे भी पूछा, उसी ने अंदर जाने को कहा ।

फिर उसी तरह के प्रश्न और उसी तरह के उत्तर । जयन्तिया को उन सब प्रश्नों के उत्तर देकर भी उसे संतुष्ट नहीं कर पाया था और ऐसा लगा कि यह आदमी भी पूरा विश्वास नहीं कर पा रहा था ।

मैंने फिर सफाई दी, लाल रग का मकान देखकर इसी को घनश्याम बाबू का मकान समझ लिया था मैंने और अदर चला आया था ।

हिन्दुस्तानी आदमी था, दरबान था शायद । पहले आ गया होता तो बहुत सी समस्याओ का समाधान हो गया होता । परन्तु जब उस दिन के ग्रह ही खराब थे तो क्या करता मैं ।

दरबान बोला, इस मकान में कोई नही है, सब शादी में गये है ।

मैंने पूछा, कोई नहीं है ?

—नहीं बाबूजी ।

हतचकित हो गया मैं, फिर इतनी देर से किससे बात कर रहा था । कौन है वह जयन्तिया, जिसने मेरा मुँह दबा रक्खा था । कमरे में अभी तो उसके लगाये इत्र की खुशबू थी । अभी भी उसका चेहरा मन में अंकित था ! और वह आदमी ! सरयूप्रसाद ! अपने कानों से उसकी आवाज सुनी थी ! दोनों झगड़ रहे थे ! तो क्या सब स्वप्न था ।

मैंने पूछा, और तुम्हारी दीदीमणि ?

उसने पलटकर पूछा, कौन-सी दीदीमणि ?

—जयन्तिया नाम की कोई नहीं है घर में ?

—नहीं कोई नही है, सब गये हैं बाबूजी ।

मैंने कहा, पर वह तो मुझे यहाँ बैठे रहने को कह गई थी अभी जरा देर पहले ।

है, विलास हमारे लिये नहीं है। हमारे लिये तो केवल जीविका की प्रताड़ना है, केवल जीवन संग्राम है। बड़े लोगों के गाड़ी मकान दूर से देखकर एक दीर्घश्वास तो अवश्य छोड़ा था, परन्तु उसकी आकांक्षा को प्राणपण मन से हटाने का प्रयत्न करता रहा था।

परन्तु उस दिन लगा था कि मेरा भी जीवन जैसे सार्थक हो गया था। भले ही कुछ क्षणों के लिये थी पर स्वर्ग की अनुभूति तो हुई थी। अन्तर कुछ पल के लिये सब कुछ भूल कर किसी की घनिष्ठता में तो खोया। और क्या चाहा था मैंने !

तब भी शरीर में रोमांच की सिहरन दौड़ रही थी।

फिर से आँखें वंद करके सारी घटना प्रारम्भ से याद करने को जी चाहने लगा।

कुछ पल वाद बोला, यह देखो दरवान जी, घनश्याम बाबू को यह खाते देने आया था। मैं उन्हीं की गद्दी पर काम करता हूँ न।

वह शायद समझ गया था। बोला, ठीक है बाबूजी।

तब मैंने कहा, अच्छा, अब तुम मुझे रास्ता दिखा दो। मुझे बाहर कर दो।

यह सुनकर दरवान चल दिया और मै भी उसके पीछे हो लिया। चलते हुए चारों ओर नजरें दौड़ाई तो पाया कि सारा मकान सुनसान था। कहीं-कही बत्ती टिमटिमा रही थी। तब तक कोई नहीं लौटा था मैं इधर-उधर देखने लगा—शायद कहीं जयन्तिया दिखाई दे जाये, शायद कही खड़ी मुझे देख रही हो। ऐसा लग रहा था कि अभी पीछे से आवाज देगी और कहेगी कि जब मैंने वैठे रहने को कहा था तो चले क्यों आये ? इन्तजार क्यों नही किया ?

कल्पनाओं में खोया हुआ था कि फाटक आ गया और दरबान ने मुझे बाहर कर दिया। सड़क पर खड़े होकर आँखें उठाईं तो देखा वास्तव में दोनों मकान विल्कुल एक जैसे थे।

चारों ओर देखा तो पाया रास्ता जन विरल हो गया था। शायद काफी रात हो गई थी। दो-चार साँड़ फुटपाथ पर निश्चिन्त वैठे जुगाली कर रहे थे।

घनश्याम बावू के फाटक पर गया तो पूरा मकान अंधकार में डूबा था। कहीं वत्ती जलती दिखाई नही दी। शायद सो गये थे सब लोग।

डर लगने लगा। घनश्याम बाबू की फटकार सुननी पड़ेगी। पंडित

है, विलास हमारे लिये नहीं है। हमारे लिये तो केवल जीविका की प्रताड़ना है, केवल जीवन संग्राम है। बड़े लोगों के गाड़ी मकान दूर से देखकर एक दीर्घश्वास तो अवश्य छोड़ा था, परन्तु उसकी आकांक्षा को प्राणपण मन से हटाने का प्रयत्न करता रहा था।

परन्तु उस दिन लगा था कि मेरा भी जीवन जैसे सार्थक हो गया था। भले ही कुछ क्षणों के लिये थी पर स्वर्ग की अनुभूति तो हुई थी। अन्तर कुछ पल के लिये सब कुछ भूल कर किसी की घनिष्ठता में तो खोया। और क्या चाहा था मैंने !

तब भी शरीर में रोमांच की सिहरन दौड़ रही थी।

फिर से आँखें बंद करके सारी घटना प्रारम्भ से याद करने को जी चाहने लगा।

कुछ पल बाद बोला, यह देखो दरवान जी, घनश्याम बाबू को यह खाते देने आया था। मैं उन्हीं की गद्दी पर काम करता हूँ न।

वह शायद समझ गया था। बोला, ठीक है बाबूजी।

तब मैंने कहा, अच्छा, अब तुम मुझे रास्ता दिखा दो। मुझे बाहर कर दो।

यह सुनकर दरबान चल दिया और मैं भी उसके पीछे हो लिया। चलते हुए चारों ओर नजरें दौड़ाई तो पाया कि सारा मकान सुनसान था। कही-कही बत्ती टिमटिमा रही थी। तब तक कोई नहीं लौटा था मैं इधर-उधर देखने लगा—शायद कहीं जयन्तिया दिखाई दे जाये, शायद कही खड़ी मुझे देख रही हो। ऐसा लग रहा था कि अभी पीछे से आवाज देगी और कहेगी कि जब मैंने बैठे रहने को कहा था तो चले क्यों आये ? इन्तजार क्यों नहीं किया ?

कल्पनाओं में खोया हुआ था कि फाटक आ गया और दरबान ने मुझे बाहर कर दिया। सड़क पर खड़े होकर आँखें उठाईं तो देखा वास्तव में दोनों मकान बिल्कुल एक जैसे थे।

चारों ओर देखा तो पाया रास्ता जन विरल हो गया था। शायद काफी रात हो गई थी। दो-चार साँड़ फुटपाथ पर निश्चिन्त बैठे जुगाली कर रहे थे।

घनश्याम बाबू के फाटक पर गया तो पूरा मकान अंधकार में डूबा था। कहीं बत्ती जलती दिखाई नहीं दी। शायद सो गये थे सब लोग।

डर लगने लगा। घनश्याम बाबू की फटकार सुननी पड़ेगी। पंडित

जी भी बहुत डाँटेंगे। कहेंगे, तुम्हारे भले के लिये भेजा था तुम्हें। सोचा था कि निगाहों में आ जाओगे तो वेतन बढ़ जायेगा।

मेरे यह कहने पर कि घर पहचानने में देर हो गई तो कहेंगे नहीं बंगाली बाबू तुमसे नहीं होगा, अब चतुरानन जी जायेंगे।

इस बात का क्या जवाब दूँगा यह तय कर लिया मैंने। सोचा, हाथ जोड़कर कहूँगा—इस बार माफ कर दीजिये पंडित जी! अबकी बार ठीक पहुँच जाऊँगा। कल रात हो जाने के कारण गलती हो गई थी।

यही सब सोचता घर लौटा। भैया तब तक बिना खाये बैठे थे। मुझे देखकर जान में जान आई उनकी।

बोले, इतनी देर हो गई तुम्हें आने में? मुझे तो फिक्र हो रही थी थोड़ी देर और नहीं आते तो थाने मे रिपोर्ट लिखाने जाता।

मैंने कहा, गद्दी के काम से घनश्याम बाबू के घर जाना पड़ा इसलिये देर हो गई।

भैया ने पूछा, क्यों? उनके घर क्यों जाना पड़ा?

—वह बीमार हैं, गद्दी पर नहीं आ पाये थे।

इतना कहकर अपने कमरे में कपड़े बदलने चला गया मैं।

पत्नी भी खिड़की में खड़ी इन्तजार कर रही थी। मुझे देखकर आँखें छलछला आईं उसकी।

बोली, बड़ी फिकर हो रही थी, इतनी देर में आता है कोई?

मैंने कहा, जान बूझकर देर थोड़े ही की है। गद्दी का काम पड़ गया तो क्या करता?

कहकर नल पर जाने लगा तो वह बोली, ये तुम्हारे मुँह और गले पर किस चीज के दाग हैं? खून कहाँ से आया?

—कहाँ? यह कहकर लालटेन की रोशनी में आइना देखा और बोला, वह कुछ नहीं है, कहकर नल पर चला गया।

जयन्तिया ने मेरे मुँह पर हाथ रक्खा था, शायद उसी के आलते का रंग लग गया था।

साबुन से घिसकर रंग साफ किया और कपड़े पहनकर भैया के साथ खाने बैठ गया।

दूसरे दिन सुबह यथारीति छाता लेकर घर से निकलने लगा तो पत्नी ने पूछा, तुम्हें आज भी देर होगी क्या?

—अभी से कैसे बताऊँ ? पर शायद आज देर नहीं होगी ।

बाहर भैया मिले ।

उन्होंने भी वही प्रश्न किया, तुम्हें आज भी देर होगी क्या तिन-कड़ि ?

मैंने कहा, आज शायद न हो, आज पंडितजी लगता है चतुरानन को भेजेंगे ।

फिर वही बड़ा बाजार की तरफ चल दिया । हर ओर भीड़ ही भीड़ । अपने में खोया छतरी लगाये सड़क के एक किनारे चल रहा था पहले दिन का सम्मोहन अभी भी दूर नही हुआ था । फिर गलती से घनश्याम बाबू के मकान के बहाने उसी मकान में घुस जाऊँ तो ! फिर से उसी लड़की से सामना हो, फिर रात वाली घटना की पुनरावृत्ति हो तो !

गद्दी पर पहुँचते ही सबके सब साथ झपटे जैसे ।

पंडितजी बोले, कल घनश्याम बाबू के घर नहीं गये बंगाली बाबू ।

चतुरानन जी तिरस्कृत मुस्कान ओठों पर लाकर बोले, बंगाली बाबू रास्ते में सो गये थे । खाकर नींद आ गई थी ।

तिलक चांद बोले, बगाली खाली भात खाते हैं न, इसलिये नींद ज्यादा आती है ।

पंडित ने पूछा, क्या हो गया था बंगाली बाबू ? गये क्यों नही ?

मैंने कहा, घर नही पहचान पाये पंडित जी, गड़बड़ हो गई ।

जरा आश्चर्य से उन्होंने कहा—क्यों ? गड़बड़ क्यों हो गई ?

मैंने कहा, पचहत्तर बटा दो अँधेरे में मिला ही नही, सब मकान एक से लाल रंग के है ।

अवज्ञा भरे स्वर में उन्होंने कहा, बड़े ताज्जुब की बात है, छोटा सा काम नही हुआ तुमसे । सुबह-सुबह फोन आया था बाबूजी का बहुत गुस्सा हो रहे थे ।

मैंने कहा, आज ठीक पहुँच जाऊँगा पंडित जी ।

वह बोले, नहीं, आज तुम नहीं चतुरानन जी जायेंगे ।

मैंने अनुनय भरे स्वर में कहा, कुसूर माफ कर दीजिये पंडितजी । आज जरूर पहुँच जाऊँगा, और किसी को मत भेजिये ।

चेहरा गम्भीर हो गया उनका । बोले, काम ठीक न होने पर बाबू

जी मुझ पर नाराज होते हैं। कल इतना जरूरी काम था, तुमने किया नहीं, गद्दी का काम ऐसे थोड़े ही चलेगा।

मैं कुछ न कहकर काम में लग गया। मेरी वजह से शायद काफी नुकसान हो गया था। दोपहर को बारह बजे चाय वाला आया। सब चाय पीने लगे। मैं चाय पीता नहीं था, इसलिये सिर झुकाये चुपचाप काम करता रहा। पंडितजी के मुझे भेजने को मना कर देने के कारण मन हताश हो गया था। अगर एक बार जाने का मौका मिलता तो कम से कम यह जानने का प्रयत्न करता कि मेरा मुँह किसने दबाया था! किससे बातें की थी मैंने। हालांकि जानने का कोई उपाय नहीं था, पर घर के सामने जाकर देखता तो। और अगर सुयोग मिल जाता तो अन्दर घुस जाता।

पंडित जी शायद काफी देर से मेरे हाव-भाव लक्ष्य कर रहे थे।

बोले, बंगाली बाबू!

मुँह उठाया मैंने।

—आज पहुँच जाओगे सही जगह पर? आज तो गलती नहीं करोगे?

खुशी से उछल पड़ा मैं।

बोला, नहीं, आज कोई गलती नहीं होगी पंडितजी। आप देख लीजियेगा आज पहुँच जाऊंगा।

—तो फिर तैयार हो जाओ। पाँच बजते ही सीधे कॉटनस्ट्रीट चले जाना।

बदन में एक अद्‌भुत आनन्दमयी सिहरन दौड़ गई यह सुनते ही। इस बार नहीं डरूंगा। सीधे-सीधे पूछूंगा—कल जिस आदमी के साथ बात कर रही थी, कौन है वह? किसके साथ झगड़ा कर रही थी? सरयूप्रसाद कौन है? क्यों आता है वह यहां? क्यों रुपये देकर बार-बार उनकी सहायता करती हो? तुम्हारा क्या स्वार्थ है? क्या सम्बन्ध है तुम्हारा उससे? अगर वह नहीं आना चाहता तो क्यों बुलवाती हो उसे?

सारी दोपहर एक बेचैनी में कटी। दिखाने को तो सिर झुकाये लिखता रहा, परन्तु मन बड़ा अन्यमनस्क रहा।

चतुरानन जी ने पूछा, क्या सोच रहे हो बंगाली बाबू?

पल भर में सँभाल लिया अपने को मैंने।

सोचकर बताइये। मैं भी तो यहाँ एक दिन डाक्टरी करने के इरादे से ही आया था। पर डाक्टरी का एक शब्द भी तो नहीं जानता था, मात्र होमियोपैथिक की एक किताब पर भरोसा था।

अच्छा शुरू से ही सुनाता हूँ।

देवघर उन दिनों बहुत सस्ता था। जेल से जिस दिन छूटा, किसी को मुँह दिखाने के काबिल नहीं रहा था मैं।

पिताजी ने पूछा था, आपको कितने साल की जेल हुई थी ?

—खून के अपराध में यूँ तो फांसी ही होनी थी अर्थात् तीन सौ दो धारा के अनुसार ही मेरा मुकदमा होता। मुझ पर इल्जाम था कि मैंने सरयूप्रसाद का खून किया था, उससे रुपया उधार लिया था। जाने कौन था सरयूप्रसाद, आँखों से देखा तक नही था उसे मैंने ! और कब व कितना रुपया उससे उधार लिया था, यह भी नहीं जानता था, परन्तु गवाहों ने प्रमाणित कर दिया था कि मैं गरीब आदमी था, सात रुपये महीने की नौकरी करता था, गृहस्थी नहीं चलती थी, इसीलिये सरयूप्रसाद से रुपये उधार लेता रहता था। बढ़ते-बढ़ते जब वह बहुत बड़ी राशि हो गई तो और कोई चारा न देखकर मैंने उसका खून कर दिया। सरयूप्रसाद अपने रिश्तेदार बांकेबिहारी के यहाँ अक्सर जाता रहता था, उस दिन उसके पीछे-पीछे जाकर मैंने उसे मार डाला।

वकील ने मुझसे पूछा था, सरयूप्रसाद का खून करने के लिये क्या तुम काफी समय से उसका पीछा कर रहे थे ?

मैंने कहा था, मैंने तो सरयूप्रसाद को कभी देखा भी नहीं।

वकील बोला, देखा नहीं, पर सही आदमी का खून करने में तुमसे कोई भूल नहीं हुई ! सरयूप्रसाद बांकेबिहारी के यहाँ जाता था, यह तुम्हें कैसे पता चला ? तुम कई दिनों से उसका पीछा कर रहे थे ?

अच्छा यह बताओ कि तुम्हें यह कैसे पता चला कि उस दिन बांके-बिहारी के घर के सब लोग विवाह में जाने वाले थे ?

गवाही के समय मैं आश्चर्यचकित रह गया जब सबने कहा कि उस दिन नौकर दरवान के अलावा घर में और कोई नहीं था।

मेरे वकील ने कहा, पर जयन्तिया नाम की एक लड़की उस दिन घर में थी।

साक्षियों ने कहा, नहीं वह भी सबके साथ गई थी।

अन्त में जयन्तिया भी गवाही देने आई थी। मैंने नजर उठाकर

देखा। मुँह पर बड़ा सा घूंघट डालकर उस दिन को उस लड़की ने कहा उस दिन वह घर पर नहीं थी। मुझे उसने कभी नहीं देखा था, पहचानने की बात ही नहीं थी। सब लोगों के साथ जब वह बहुत रात को घर आई थी तो देखा सरयूप्रसाद का किसी ने खून कर दिया था।

घूंघट के अन्दर से मैंने उसका चेहरा देखने की बहुत कोशिश की, पर देख नहीं पाया। लेकिन स्वर वही था।

मेरे वकील ने पूछा, आपने सरयूप्रसाद को उस दिन आने के लिये चिट्ठी लिखी थी?

उसने कहा, नहीं!

—आपने सरयूप्रसाद को कारबार के लिये रुपये देकर मदद की थी?

—नहीं।

—सरयूप्रसाद से आप बहुत नाराज थीं, क्यों?

उसने कहा, मैं क्यों गुस्सा होती? उसने तो कोई अपराध नहीं किया था?

वकील ने कहा, उसके एक रखैल रख लेने के लिए आपने उसे बहुत फटकारा था ना?

—नही तो।

आपके कई बार सावधान करने पर भी वह उसके पास जाता था। आपके पास आना उसने प्रायः बंद कर दिया था, यह सच है?

—नहीं।

अन्त में जिस दिन घर में कोई नहीं था, आपने उसे बुलाकर बदला लेने का संकल्प किया था?

—नहीं? यह बिल्कुल गलत है।

जितने दिन मुकदमा चला, कोर्ट में अपार भीड़ होती रही थी। भैया ने मकान वेचकर वकील के लिये रुपये जुटाये थे। उनकी ओर देखा नहीं जाता था, दिन पर दिन सूखते जा रहे थे। मेरी जमानत नहीं हुई। हवालात में आकाश-पाताल की सोच-सोचकर पागल-सा हो गया था मैं। सोचता था जो होना है जल्दी हो जाये।

अन्त में फैसला सुनाया गया।

घर की क्या हालत हुई, यह देखने का अवसर मुझे नहीं मिला। भैया कोर्ट में ही बेहोश होकर गिर पड़े थे। मुझे सिपाही पकड़कर ले

गये और वैन में चढ़ा दिया। अच्छा ही हुआ। फाँसी से बच जाने के लिये भगवान को धन्यवाद दिया। तीन सौ दो के बदले तीन सौ तीन लगाई गई थी। जीवन का एक नया अध्याय शुरू हुआ।

जेल में विताये दीर्घकाल का इतिहास नहीं सुनाऊँगा आपको। उसमें कोई नूतनता नहीं थी। एकरस कष्टमय जीवन था वह। कैसे दिन होता और वीत जाता, यह बताने की जरूरत नहीं है। परन्तु जिस दिन जेल से छूटकर घर गया तो देखा भैया के अलावा सभी जीवित थे। भैया ने मकान बेचा नहीं था, गिरवी रख दिया था। वह छुड़ा लिया गया था। मरने से पहले भैया एक बहन का विवाह कर गये थे, वही बहनोई सवकी देखभाल कर रहा था।

एक दो दिन बाद ही पता चल गया कि मेरे आविर्भाव ने घरवालों को बेचैन कर दिया था। मुझे वह लोग अपना नही पा रहे थे।

एक तो नौकरी नहीं थी और उस पर खून का अपराधी था। पूरे मनुष्य समाज से वितृष्णा हो गई थी मुझे। किसी से न तो मिलता और न बात करता। मैं जैसे अपांक्तेय हो गया था।

और अधिक सहन नही कर सका मैं वह व्यवहार।

पत्नी के पास पच्चीस रुपये थे और हाथों में दो सोने की चूड़ियाँ थीं। उन्हीं का सहारा लेकर एक दिन यहाँ चला आया। सोचा, चाहे कितनी भी मुसीबत उठानी पड़े पर अब यहाँ नहीं रहूँगा। वैद्यनाथ के चरणों में दोनों उपासे रह लेंगे पर उस यन्त्रणा से तो मुक्ति मिल जायेगी। अपने-पराये सब एक से हो गये है। यहाँ रहा तो ज्यादा दिन जीवित नहीं रहूँगा।

चूड़ियाँ बेचकर अस्सी रुपये मिले और पच्चीस रुपये पत्नी के मिला कर एक सौ पाँच रुपये गाँठ में बाँधकर पत्नी के साथ घर से निकल पड़ा। आते समय होमियोपैथी की दुकान से बंगला की एक किताब और दवाइयों का बक्सा खरीद लिया।

पत्नी से पूछा था, परदेस में कष्ट तो नहीं होगा तुम्हें?

वह सदा से ही कम बोलते वाली थी। कितनी भी तकलीफ हो मुँह पर शिकन नहीं आते देखा। सिर हिलाकर बोली, नहीं।

ट्रेन में बैठ गया। मन में विचारों का ताँता लग गया। बहते-बहते कहाँ पहुँचूंगा कौन जाने। जिसने अकारण जेल भिजवाया था, उसी ने बाबा वैद्यनाथ के चरणों में ठेल दिया। मैं क्या कर सकता था! अभि-

योग करने को था ही क्या। चाउलपटि के भजवंश का अंतिम वंशधर मैं कलकत्ते के मुहल्ले के लोगों की आँखों के सामने से हट गया। स्टेशन तक विदा करने को कोई नहीं आया। यात्रा सफल होने की किसी ने शुभेच्छा प्रकट नहीं की। हमारे चले जाने से जैसे सबने चैन की साँस ली। वहाँ से हटकर मैंने उन्हें कलंक से यथासाध्य मुक्ति दे दी थी जैसे। तब तक एक बहन का विवाह बाकी था—उसके रास्ते का रोड़ा कैसे बनता मैं भला? भले ही किसी की सहायता न कर सकूँ, लेकिन किसी के रास्ते में बाधक नहीं बनूँगा मैं।

सोचते-सोचते आँसू बहने लगे। जानता था कि उन आँसुओं से किसी के मन को दुख नहीं होगा पर रोता रहा। देश छोड़ने का उतना दुख नहीं था मुझे, जितना इस बात का कि मेरा कोई नहीं रहा।

पत्नी की ओर देखा तो चकित रह गया। उसकी आँखे बिल्कुल सूखी थीं।

पूछा, कलकत्ता छोड़ने का दुःख नहीं है तुम्हें?

सिर हिलाकर जताया उसने—नहीं।

यहाँ आकर बाजार के पास एक कमरा किराये पर लिया। घर क्या—बस सर छुपाने की जगह थी। फिर सड़क के किनारे यही दुकान ली। इस समय जहाँ आप बैठे है, वहीं वह दुकान थी—दो रुपये महीने किराया था। यही मेरा दवाखाना था।

जेब में कुल इकतीस रुपये रह गये थे। बाकी सब किराये व सामान खरीदने में खर्च हो गये थे। उन्हीं इकतीस रुपयों के भरोसे एक शुभ-दिन देखकर डाक्टरी शुरू कर दी मैने।

डाक्टरी का काला अक्षर भैंस बराबर था मेरे लिये। किसको अनाटामी कहते है और किसको फिजिओलाजी, मेटिरिया मेडिका क्या था—कुछ भी तो नहीं जानता था। सुबह आकर यहाँ बैठ जाता और मन लगाकर किताब पढ़ता रहता। जी ऊबता तो सड़क की तरफ देखता रहता।

बाहर 'द ग्रेट होमियो हॉल' का बोर्ड लगा दिया था। तीर्थयात्री उसकी तरफ देखते और हँसकर मजाक उड़ाते।

लोग हँसते हुए निकल जाते। रोगी की आशा में मैं सुबह से संध्या तक बैठा रहता और शाम को उस टूटे-फूटे कमरे के छोटे से अलकतरा पुते दरवाजे पर ताला लगाकर चला जाता। फिर पत्नी के साथ मंदिर

जाता और बाबा वैद्यनाथ के चरणों में थोड़ी देर बैठता।

मन ही मन बाबा से कहता, तुम्हारे चरणों में आश्रय लिया है ठाकुर, हम लोगों को देखना-सँभालना।

और मेरे दवाखाने के सामने ? वहाँ ठीक सामने एक मकान था। वह देखिये। वह मकान तब भी था। सुनता, पंचकोट या कहीं के राजा का मकान है। लाल ईंटों का सुन्दर मकान। उस समय मकान नया था। साल में एक बार पूजा के समय राजा साहब आते। उन दिनों सदर दरवाजे पर बन्दूकधारी दरवान पहरा देता और कुछ दिनों के लिये एक तरफ से दूसरी तरफ तक के सारे खिड़की दरवाजे बंद रहते। बीच-बीच में एक बड़ी सी मोटर आकर दरवाजे पर रुकती और सामने पर्दा लगा दिया जाता। कौन उतरता-चढ़ता, कुछ पता नहीं चलता। पर तब भी आश्चर्यचकित दृष्टि से उधर देखता रहता।

उन दिनों वही दिन भर का मनोरंजन था।

देवघर पहुँचने के कुछ दिन बाद मेरे बड़े लड़के का जन्म हुआ, अब खर्च और बढ़ गया। गाँठ की पूँजी के इकतीस रुपये कम होते जा रहे थे।

मन्दिर जाकर रोज भगवान से प्रार्थना करता।

लेकिन पत्थर के ठाकुर से तो हमारा काम चलता नहीं। हमारा ठाकुर तो रोगी था—उस रोगी की कृपा-दृष्टि पड़े बिना तो गुजारा था नहीं। ऐसी बात नही थी कि रोगी आते ही नहीं थे। भूले-भटके आ ही जाते थे, और मैं दवा भी देता था। पर जो एक बार आता, वह लौट कर दुबारा नही आता।

दूसरे साल एक और लड़का आ गया घर में तो और भी चिंता सताने लगी।

मंदिर गया और बाबा के चरणों मे सिर पटका, कहा बाबा अपने चरणों में बुलाकर यही गति करनी थी मेरी! कृपा करो ठाकुर।

उस बार पूजा की छुट्टियो में सामने के मकान में फिर चहल-पहल शुरू हो गई। रंग-रोगन हुआ। दरवाजे पर बन्दूक लिये दरबान खड़ा हो गया। सामने के सारे खिड़की दरवाजे बंद हो गये। और फिर एक दिन मोटर आ पहुँची। मोटर से दरवाजे तक पर्दे लगाये गये। मैं समझ गया कि राजा सपरिवार आ गये थे।

पर उससे मुझे क्या फर्क पड़ता था। मैं तो पैदा ही दुख भोगने के लिये हुआ था।

उस दिन पत्नी से पूछा, तुम्हारे पास कुछ रुपये हैं ?

वह बोली, तीन रुपये है।

रात को नींद नहीं आई। इस तरह कितने दिन चलेगा। तख्त पर दोनों लड़के सोये हुए थे, उनकी ओर देखा—पूरा खाना न मिलने की वजह से सूखे सरापे थे। पत्नी की ओर तो देखा ही नही जाता था। लेटे-लेटे फिर से भगवान को पुकारने लगा।

शायद झपकी लग गई थी।

अचानक बाहर किसी की आवाज सुनाई दी।

—डाक्टर साहब ! डाक्टर साहब !

चौंककर उठ बैठा।

इस तरह रात को तो कभी कोई रोगी बुलाने आया नहीं मुझे। कहीं गलतफहमी तो नही हुई। स्वप्न तो नहीं देखा ?

—डाक्टर साब ! डाक्टर साब !

एकदम खड़ा हो गया। पत्नी ने भी सुनी थी आवाज, उसने उठकर लालटेन जला दी। मेरे कपड़े फटे थे। जल्दी से बदलकर दरवाजा खोलकर बाहर आया और बोला—कौन ?

कई आदमी थे बाहर। एक आदमी पेट्रोमैक्स लिये हुए था, जिससे पूरी बस्ती में जैसे दिन का उजाला छा गया था।

एक आदमी ने सामने आकर हिन्दी मे पूछा, आप ही डाक्टर साहब हैं ?

कहा, हाँ !

वह बोला, स्टेशन रोड पर 'द ग्रेट होमियो हॉल' आपका ही दवाखाना है ?

—हाँ !

—आपको मेरे साथ चलना पड़ेगा जरा, एक लड़का बीमार है, छटपटा रहा है। अभी देखना है।

क्या कहूँ, कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था। मेरी जैसे बोलती बन्द हो गई थी, विश्वास नहीं हो रहा था कि इतने दिन बाद क्या भगवान को सचमुच मुझ पर दया आ गई थी।

मुझे चुप देखकर वह आदमी बोला, विजिट के आप जितने रुपये

माँगेंगे, मिलेंगे। उसकी चिंता मत करिये आप—गाड़ी लाया हूं आपको ले जाने के लिये।

तब भी विश्वास नहीं हो रहा था जैसे। मेरे लिये गाड़ी! क्या जानता हूँ मैं डाक्टरी का! क्या बीमारी है! क्या दवा दूँगा। डर लगने लगा।

वह बोला, पाँच सौ रुपये माँगेंगे तो भी दिये जायेंगे, बस आप तुरंत चलिये।

पूछा, इस वक्त बजा क्या है?

हाथ की घड़ी देखकर वह बोला, दो।

मैंने कहा, ठीक है, कपड़े पहन लूं?

वह वहीं खड़ा रहा। मेरे यहां बैठने का कोई कमरा तो था नहीं। एक कमरा ही सब कुछ था।

अन्दर जाते ही सहमी हुई नजरों से पत्नी ने मेरी ओर देखा।

मैंने पूछा, एक जोड़ी साफ कपड़े है?

उसने कपड़े निकाल दिये। स्टेथेस्कोप ले लिया, हालाँकि उसका प्रयोग नहीं जानता था। परन्तु यह जानता था कि विजिट के लिये जाते समय लेना पड़ता है।

चलते हुए देखा पत्नी ने गलवस्त्र होकर दीवाल पर टंगी बाबा वैद्यनाथ की तस्वीर को प्रणाम किया। मैंने भी हाथ जोड़ दिये। हालाँकि मुझे अभी भी विश्वास नही हो रहा था। पाँच सौ रुपये—इन तीन शब्दों ने मन में उथल-पुथल मचा दी थी।

पत्नी से कहा, तुम दरवाजा बन्द करके सो जाओ और बाहर निकल आया।

अन्दर गली में घर होने के कारण बड़ी सड़क तक पैदल आना पड़ा। चलते-चलते वह व्यक्ति बोला, बड़ी मुश्किल से आपका ठिकाना मिला डाक्टर साहब।

सड़क पर खड़ी गाड़ी देखकर ठिठक सा गया। गाड़ी पहचानी सी लगी। जैसे कई बार देखी हो।

हम लोगों के बैठते ही गाड़ी चल दी। जरा देर बाद जब वह मेरे ही दवाखाने के सामने आकर रुकी तो आश्चर्य में पड़ गया—महाराज के दरवाजे पर।

गाड़ी के रुकते ही दरवान ने फाटक खोल दिया और गाड़ी अन्दर जाकर खड़ी हो गई।

पहले वह व्यक्ति उतरा और बोला, आइये डाक्टर साहब।

उतर गया मैं। डर से हृदय काँपने लगा। अन्त में इस घर से बुलावा आया। सुना था पंचकोट के राजा हैं या शायद महाराज हैं। कितने दिनों तक चुपचाप बैठे-बैठे इस मकान का ऐश्वर्य व वैभव देखा है। आज यहीं से बुलावा आया!

पेट्रोमैक्स की रोशनी में उस व्यक्ति के पीछे-पीछे सीढ़ियाँ चढ़ने लगा मैं। अब तक बाहर से ही मकान देखा था। उस दिन अन्दर से देखने का भी सुयोग मिल गया। मेरे अनुमान से कहीं अधिक बड़ा था मकान। उतनी रात को भी सब लोग जाग रहे थे। अनगिनत नौकर-चाकर थे सब सन्त्रस्त दिखाई दे रहे थे। महाराज का लड़का बीमार था, इसलिये किसी को भी विश्राम का अवकाश नहीं था।

जीने के बाद एक बहुत बड़ा हॉल था, जिसमें मुझे बैठाकर वह आदमी अन्दर चला गया। मैंने चारों ओर दृष्टि घुमाई, हॉल के चारों तरफ छोटे-छोटे कमरे थे। एक कमरे का दरवाजा खुला हुआ था, वह शायद आफिस था, अन्दर टेबिल पर बहुत से बही-खाते व कागज-पत्र रक्खे थे। कई कुर्सियाँ भी थीं।

कई मिनट बाद वही व्यक्ति आकर बोला, चलिये डाक्टर साब।

अन्तःपुर में कहीं कोई आवाज नहीं थी। कई कमरे व दालान पार करने के बाद एक कमरे के सामने एक आदमी को उदास मुँह खड़े देखा। अच्छा लम्बा-चौड़ा शरीर था, सफेद चिट्टा रंग। सर के सामने के बाल झड़कर गंज उभर आया था। मेरी ओर उत्सुक दृष्टि से देख रहे थे।

मेरे साथ वाला बोला, डाक्टर साहब आ गये महाराज जी।

मैं समझ गया कि वही महाराज थे और मुझे लाने वाला मुंशी।

महाराज बोले, आइये।

कहकर मुझे कमरे में ले गये। एक पलंग पर सात-आठ साल का एक लड़का पड़ा यन्त्रणा से छटपटा रहा था। तकिया छिटक कर दूर जा पड़ा था। आँखें बन्द थीं और बदन अस्थिर।

मैंने पूछा, क्या हुआ इसे?

महाराज बोले, आज शाम के बाद से तबियत खराब है, कुछ भी

मुझे लाने वाला आदमी पास खड़ा सब देख रहा था। उसके सामने अपने को बड़ा हीन अनुभव करने लगा। अगर मेरी अज्ञता पकड़ ली तो! कौन-सी दवा निकालूँ, तय नहीं कर पाया। साधारण रोगी नहो, राजा का लड़का था। अगले दिन कलकत्ता के बड़े-बड़े डाक्टरों का सामना करना पड़ेगा। यों ही ऐसी-वैसी दवा नहीं दी जा सकती। यद्यपि दवा की शीशियों पर नाम लिखे थे, पर ऐसा लगा जैसे वहाँ स्याही पुती थी। इतने दिन जो सीखा पढ़ा था, वह भी जैसे भूल गया था।

अन्त मे एक शीशी निकालकर चार पुड़िया बनाई और पास खड़े व्यक्ति को देकर बोला, एक पुड़िया अभी खिला दीजिये और बाकी तीन आधा-आधा घंटे बाद।

आज भी याद है कि मन ही मन उस अदृश्य शक्ति से बार-बार प्रार्थना की थी कि राजा का लड़का ठीक हो जाये, मेरी इज्जत रह जाये। राजा के लड़के की अपेक्षा अपने सम्मान का ही अधिक ख्याल था मुझे। कलकत्ते में मेरा वह सम्मान धूलिसात हो गया था। परन्तु वह तो जीवन के प्रथम चरण की बात थी। उस जीवन को तो मैं कब का पीछे छोड़ आया था। अब मेरे जीवन का दूसरा परिच्छेद था, फिर से जीवन शुरू किया था मैंने! यहाँ तो सम्मान हानि न हो। मेरा सर ऊँचा रहे। बस भगवान से यही मनाता रहा था मैं।

महाराज बोले, आपके सोने की व्यवस्था बगल के कमरे में कर दी है। आज रात आप यहीं रहिये। आपके घर खबर भिजवा रहा हूँ।

मैंने कहा, आधे-आधे घंटे बाद दवा अवश्य दे दी जाये और उसकी हालत की मुझे खबर देते रहें।

जाकर बिस्तर पर बैठ गया। बत्ती जल रही थी, वह भी बुझा दी। रोगी की कराहट तब भी सुनाई दे रही थी। बैठा-बैठा सोच रहा था, क्या मालूम कि ठीक दवा दी है या गलत! क्या दवा दी है, यह तो मैं खुद भी नहीं जानता! उस समय जो हाथ में आई वही दे दी थी।

फिर कब लेटा और कब सो गया, पता ही नहीं चला।

अचानक किसी ने पुकारा तो नींद टूटी। देखा सुबह हो गई थी।

उठकर बैठ गया। वही मुंशी सामने खड़ा था।

पूछा, मरीज कैसा है?

उसने कहा, सो गया है।

—महाराज कहाँ हैं?

—वह भी थोड़ी देर पहले सोने गये है।

मैंने पूछा दवा की तीनों खुराक खिला दी थी ?

—हाँ।

मैं बोला, अब अगर मरीज सो रहा है तो और दवा की जरूरत नहीं है।

जरा देर बाद ही हाथ मुँह धोने का पानी व साबुन तौलिया आ गया और फिर चाय नाश्ता। सारा घर मुखर हो उठा।

दिन चढ़े महाराज आये और बोले, इसी गाड़ी से कलकत्ते के डाक्टर आ रहे हैं, मेरी इच्छा है कि आप भी रहिये। आपके घर कल रात ही खबर भेज दी थी।

कुछ देर उपरान्त गाड़ी स्टेशन डाक्टरों को लाने चली गई। मेरे दिल की धड़कन फिर से तेज हो गई।

जब गाड़ी वापस आई तो देखा कविराज, एलोपैथ व होमियोपैथ, जिनके मैंने नाम भर सुने थे, आये थे। हर एक को हजार रुपये फीस पर बुलाया गया था।

सबने रोगी की परीक्षा की—वह तब भी सो रहा था। फिर पिछले दिन और रात का पूरा विवरण लिया—क्या हुआ था, क्या-क्या लक्षण थे कैसे तकलीफ बढ़ी थी आदि।

साहब डाक्टर ने पूछा, किसने देखा था ?

मुंशी ने मेरी ओर इशारा करके कहा, यही यहाँ के डाक्टर साहब हैं।

विख्यात होमियोपैथ यूनान साहब भी आये थे, साथ में असिस्टेंट भी था।

मुझे बुलाकर सब पूछा उन्होंने। बुखार कितना था, पसीना आ रहा था कि नहीं आदि।

मुझे याद है कि डाक्टरों के आने से पहले बक्सा खोलकर मैंने देखा था कि मैंने कौन-सी दवा दी थी, लेकिन होश ही गायब थे उस समय तो।

खैर, यूनान साहब ने बस इतना कहा, मार्वलस सेलेक्शन !

तदुपरान्त सभी डाक्टरों ने एक मत होकर कहा था कि जब मरीज ठीक हो गया है तो कोई और दवा देने का कोई मतलब नहीं है। जो इलाज चल रहा है, वही चले।

शाम तक मरीज की हालत और सुधर गई। हजार-हजार रुपये लेकर सब डाक्टर शाम की गाड़ी से वापस लौट गये। फिर मुझे भी गाड़ी घर छोड़ आई।

चलते समय महाराज ने कहा था, आप कुछ दिन रोज एक बार आकर देख जाइयेगा।

दो-चार दिन बाद ही मरीज बिल्कुल ठीक हो गया।

फिर जब महाराज के वापस लौट जाने का समय आ गया तो पुनः बुलावा आया।

हॉल के बगल वाले आफिस में पहुँचा तो वही मुंशी खड़े दिखाई दिये। महाराज भी शायद मेरा इन्तजार कर रहे थे।

मुंशीजी बोले, डाक्टर साहब, आपने महाराज के लड़के का इलाज किया, बहुत कष्ट उठाया, महाराज बहुत खुश हैं आपसे।

महाराज ने मेरे हाल-चाल व कितने दिनों की प्रैक्टिस है आदि प्रश्न पूछकर खजाची से कहा, डाक्टर साहब को हजार रुपये दे दो मुंशी जी।

खजांची ने खाते में खर्च लिखा और बगल में रखे लोहे के संदूक से रुपये निकालने लगा।

मुझे तब भी विश्वास नहीं हो रहा था। इतने रुपये एक साथ मिलना तो दूर कभी आँख से देखे भी नहीं थे मैंने।

मुंशी ने गिनकर रुपये मेरी ओर बढ़ाकर कहा, लीजिये डाक्टर साहब।

अचानक कमरे के पीछे चूड़ियों की आवाज सुनाई दी। वह आवाज सुनकर महाराज उठते हुए बोले, जरा ठहरिये।

यह कहकर अन्दर चले गये वह। मुंशी ने भी हाथ रोक लिया अपना।

मैं चुप बैठा रहा। अब यह कौन-सी बाधा आ खड़ी हुई?

अन्दर किसी की आवाज सुनाई दी।

मुंशीजी ने जीभ काटकर धीरे से कहा, रानी साहबा हैं।

बातचीत हिन्दी में हो रही थी। बाहर भी सुनाई दे रही थी थोड़ी-थोड़ी। कुछ-कुछ समझ में भी आ रही थी।

रानी साहबा कह रही थीं, क्यों? एक हजार क्यों? कलकत्ते के डाक्टर बिना कुछ किये हजार-हजार ले गये, और इस डाक्टर को, जिसने इतने दिन इलाज किया, उसको भी बस हजार रुपये?

महाराज बोले, अच्छा, ठीक है, दो हजार देने को कह देता हूँ।

क्यों ? दो हजार क्यों ? मेरे लड़के के जीवन से रुपया बड़ा है क्या ? लड़के को तो इन्हीं डाक्टर साहब ने बचाया है।

महाराज ने कहा, तो बताओ कितना दूँ ?

रानी साहब ने कहा, पचास हजार तो दो।

फिर और भी कुछ बातें हुईं। पचास हजार के नाम से ही सिर घूम गया, कोई बात सुनाई नहीं दी।

महाराज ने बाहर आकर कहा, मुंशी जी, डाक्टर साहब को पचास हजार रुपये दे दो।

और केवल पचास हजार रुपये नही, तय हुआ कि जब तक जीवित रहूँगा स्टेट से सीधा आया करेगा।

उसके अगले दिन ही महाराज वापस चले गये।

मैंने पच्चीस हजार रुपये में उसी जमीन पर यह मकान बनाया और पच्चीस हजार बैंक में रक्खे। उसके बाद हर साल महाराज आते रहे और अनेकों भेंट देते। मेरे कपड़े, पत्नी के जेवर-कपड़े, बच्चों के लिये तरह-तरह की चीजें।

फिर बड़े लड़के को नौकरी दी—सात सौ रुपये मिलते है उसे। छोटे लड़के के मैट्रिक पास कर लेने पर उसे भी नौकरी दे दी तीन सौ की। अब आप ही बताइये कि मुझे किस बात की चिंता है।

पिता जी ने पूछा, और प्रैक्टिस ?

प्रैक्टिस नही जम पाई। बाद को मरीज आने भी लगे थे, पर किसी को ठीक कर ही नहीं पाया।

कहानी के बाद हम उठ रहे थे, काफी रात हो गई थी।

तिनकड़ि बाबू भी बिदा करने को उठे।

चलते-चलते बोले, एक घटना नहीं बताई आप लोगों को। कोई दस साल पहले एक दिन सर्दियों में अचानक पंडित जी से मुलाकात हो गई। मेरा मकान देखकर चकित रह गये, खुश भी हुए बहुत।

मैंने पूछा, कहाँ ठहरे है पंडित जी ?

सामने पंचकोट का महल दिखाकर उन्होंने कहा, उस मकान में दो कमरे खोल दिये हैं।

पूछा, उनके साथ आपकी जान-पहचान कैसे हुई ?

वह बोले, कॉटन स्ट्रीट के बाँकेबिहारी बाबू की तो याद होगी ही ? इतना सब हुआ था ! झूठ-मूठ आप पर खून का इल्जाम थोप दिया था ! उन्हीं की बड़ी लड़की जयन्तिया की शादी पंचकोट के महाराज कुमार के साथ हुई थी । आप उस समय जेल में थे ।

उसी सूत्र से चिट्ठी लाकर पंडित जी राजमहल में ठहरे थे । उनकी बात सुनकर पहली बार समझ में आया था कि मेरा यह मकान, यह ऐश्वर्य, लड़कों की नौकरी—इन सबके मूल में कौन था ! लेकिन तब तक बहुत देर हो गई थी—कोई उपाय नहीं था । जयन्तिया की उम्र भी काफी हो गई थी और मैं भी बूढ़ा हो गया था ।

•

# एक और तरह

कुछ वर्ष सरकारी नौकरी की थी मैंने। नौकरी की सुविधाएँ और मुसीबतें दोनों ही देखी-समझी थी। जाना था कि नौकरी में और तो सब कुछ बचाया जा सकता है, लेकिन इन्सानियत को नहीं—वह भी सरकारी नौकरी में। वेतन नियमपूर्वक पहली तारीख को मिल जाता है। जब तब छुट्टी भी मारी जा सकती है और उसका वेतन भी नहीं कटता, परन्तु समय का अपव्यय बहुत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ रुपयों के लिये अपने यौवन व जीवन को जलांजलि देनी पड़ रही है। इसलिये जितने साल नौकरी की न तो मानसिक शांति मिली और न स्वाधीनता। एक वाक्य में कहा जाये तो यूं समझिये कि उन कुछ सालों में मैं, मैं नहीं रह गया था।

परन्तु क्या सचमुच कोई लाभ नहीं हुआ था।

आज इतनी दूर रहकर, इतने दिन बाद सोचता हूँ कि अतीत के उन वर्षों का लेखा-जोखा करके देखा जाये तो कैसा हो! विशेषतः नौकरी के अंतिम तीन वर्ष। जीवन पर्यन्त जितनी अभिज्ञताओं का संचय किया है, उससे कई गुना अधिक अभिज्ञताएँ उन तीन वर्षों में हुई थी मुझे! कितनी विचित्र थीं वह अभिज्ञताएँ और कितनी विचित्र वह नौकरी थी! इसी कलकत्ता शहर में जन्म हुआ है, यहीं पला और यहीं पढ़ा-लिखा। बीच-बीच में कार्यवश या छुट्टी मनाने बाहर गया अवश्य हूँ—पर कहीं भी मन को शांति नहीं मिली। जानता हूँ कि यहां की आबहवा खराब है, चीजों के दाम आसमान छू रहे हैं, यहां एक की उन्नति दूसरे की आँख की किरकिरी बन जाती है। यह जानता हूँ। यहां एक-दूसरे को अपदस्थ व तिरस्कृत करने की चिन्ता में ही घुलता रहता है। यहाँ—कलकत्ते में स्नेह, प्रेम, ममता [illegible] हैं। जानता हूं कि [illegible] बिना यहाँ सम्मान नहीं मिलता, तकरार लड़ाये बिना [illegible] यहाँ दुर्लभ है, यहाँ [illegible] का फैसला होता [illegible]

केवल महत् होने से काम नहीं चलता, प्रचार के माध्यम से उस महत्त्व को जनता में फैलाना पड़ता है। संवादपत्र के मालिकों के हाथों स्वयं को बेचना पड़ता है—अर्थदानव के हाथों आत्मा का सौदा करना पड़ता है, तभी तुम महत् हो, गुणी हो, लेखक हो और कवि हो।

यह सारी बातें मेरी अपनी नहीं है। यह सब तो समर मुझसे कहा करता था।

परन्तु मैं प्रतिवाद करता था हमेशा। कहता था, यह तुम्हारा अन्याय है समर, इस प्रकार सबको एक डंडे से हाँकना तुम्हारे लिये उचित नही है।

मैं तो बस यह भलीभाँति जानता था कि उस अस्वस्थ वातावरण में रहते हुए भी मन को जैसे शांति मिलती थी। बहुत कुछ नेतिवाचक शांति। उस अस्वस्थ आवहवा से भाग जाने पर भी हाँफ उठता था! दार्जिलिंग, पुरी तथा शिमला की स्वस्थता में भी जैसे कलकत्ते के लिये मन कसकता था। कलकत्ता की उस अस्वस्थ हवा में ही अंत में तृप्ति मिलती थी।

मुझे याद है, पहली बार जिस दिन नये डिपार्टमेंट के आफिस में गया था, एक अनजाना डर सा लग रहा था। बार-बार यही सोच रहा था, कर भी पाऊँगा!

यह भी कैसा काम था! चोर पकड़ना था, घूसखोर पकड़ना था! सरकारी नौकरी के सारे आफिसों में दुर्नीतिग्रस्त लोगों पर गोपनीय नजर रखनी थी! यद्यपि कितनी ही बार इसकी अभिज्ञता हो चुकी थी। कितनी बार हावड़ा स्टेशन पर एक सामान्य कार्यवश जाने पर घूसखोर से एकदम सामना हुआ था। शहर में सर्वत्र दुर्नीति का जाल बिछा हुआ था। पैसे की बदौलत अन्याय को भी न्याय पाते जाते देखा था मैंने।

आफिस के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने आपादमस्तक मुझ पर नजर डालकर कहा था, आप कर पायेंगे यह काम?

मुँह से तो 'कर पाऊँगा' ही कहा था, परन्तु अन्दर ही अन्दर सच-मुच डर रहा था। आज अवश्य मन में कोई खेद नहीं है। मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा किया या नहीं, इसका साक्ष्य आज भी उस आफिस की फाइलों में संलग्न है। वह सब बातें नही बताऊँगा यहाँ। मेरी ही तत्परता के कारण कितने लोग अभी भी जेल में सजा भुगत रहे हैं,

इसका हिसाब आफिस की उन फाइलों में ही रहे। आज तो मैं एक दूसरी ही कहानी सुनाने बैठा हूँ।

सुपरिन्टेन्डेन्ट ने कहा था, बड़ा कठिन काम है—यह पता है आपको!

मैंने कहा था, हाँ, पता है।

इस पर उन्होंने कहा था, जिनको पाँच हजार रुपये महीना मिलता है, वह भी रिश्वत लेते हैं और जिन्हें सवा रुपया रोज मिलता है वह भी। परन्तु मै बड़े-बड़े रिश्वतखोरों को पकड़ना चाहता हूँ। इसके बाद जरा रुककर कहा था, वैसे इस काम में मजा बहुत आयेगा आपको।

अवाक उनके मुँह की ओर देखता रहा था मै।

उन्होंने शायद आश्वस्त करने के लिये कहा था, हाँ, सचमुच मजा आयेगा, तरह-तरह के लोगों से परिचय होगा। देखियेगा दुनिया में कितने लोग अपनी नाक काटकर दूसरे का सगुन बिगाड़ना चाहते है।

वास्तव में इस तरह के लोग भी है इसका परिचय मुझे पूरे तीन सालों तक मिलता रहा था। देखा था, श्याम बाजार से एक आदमी किसी दूसरे को मिट्टी में मिलाने की इच्छा से किराये की गाड़ी लेकर आया होता। बहुत से निरपराध लोगों के विरुद्ध अभियोगों की लंबी सूची आती थी और अभियोग लगाने वाले अच्छे बड़े असामी होते थे। अपनी बुद्धि का प्रयोग करके किसी की विपत्ति से रक्षा करता तो किसी को जेल भिजवाता। दुर्दान्त श्रेणी के लोग पकड़े जाने पर मेरे पैर पकड़ कर क्षमा माँगते। कहते, आप भी बंगाली हैं और मैं भी—बंगाली हो कर आपने बंगाली का ऐसा सर्वनाश किया।

परन्तु वह सारे प्रसग यहाँ अवान्तर है।

समर की बात बताऊँगा मैं यहाँ। समरचन्द्र विश्वास—एक सरकारी दफ्तर में कैशियर था। माधव सिकदार लेन के किसी मेस में रहता था वह उन दिनों।

उसने कहा था, बरानगर में किसी से भी पूछ लीजियेगा सर। वहाँ के सब लोग जानते है हमें।

मैंने पता लगाया था, वास्तव में उसका बचपन बरानगर में ही बीता था। मल्लिक लेन में तीन पीढ़ियों की विशाल हवेली थी। और केवल घर नहीं गाड़ी भी थी।

लोग कहते थे—विश्वास घराने का लड़का।

विश्वास घराने का लड़का कह देने के बाद और कुछ कहने की जरूरत नहीं थी। कोई भी नया आदमी वरानगर आता तो रिश्तेदार पूछते, कहाँ मकान मिला।

तो वह जवाव देता, विश्वासघर के पास।

विश्वासघर कहाँ है?

चकित हो जाता वह। विश्वास घर नहीं जानते? कलकत्ते में रहते हो और वरानगर के विश्वास घराने का नाम नहीं सुना? चैत की संक्रात का विश्वास घराने का स्वाग तो विख्यात था। किसी समय वहाँ चिड़ियाखाना था। कलकत्ते में जब भी नया लाट आता, विश्वासों के यहाँ जरूर निमन्त्रित होता। दुर्गा-पूजा पर उनकी हवेली की सजावट देखने लायक होती थी। छह घोड़ों की गाड़ी पर दुर्गा-प्रतिमा को विसर्जित करने ले जाया जाता था। पुश्तैनी परिवार था। बड़े आदमी थे, इसका प्रमाण आज भी मिलता है। घर के सामने एक बहुत बड़ा गेट था। अब पहले जैसा तो नही रहा वह, पर दो टूटे सिंह अभी भी हैं। दोनों के पेट का जगह-जगह से प्लास्टर झड़ गया है, एक आँख टूट जाने से चूना-सुर्खी झड गया है, ईट दिखाई देने लगी है। ड्योढ़ी के आँगन में एक वहुत बड़ा इमली का पेड़ है, जिसकी डालों पर दिन के समय अनगिनत कबूतर गुटरू गूँ-गुटरू गूँ करते है और रात को हवेली के छज्जे के नीचे आलों में आश्रय लेते हैं। एक जमाने में रोज एक मन धान डाला जाता था उनके लिये। बंदूक की आवाज होते ही सारे कबूतर चौक कर आसमान मे उड़ जाते थे! वरानगर के बड़े-बूढ़ों ने वे दिन देखे थे। भैरव मल्लिक लेन नाम तो बाद को पड़ा है। पहले तो हवेली के सामने केवल तालाव था। उसी तालाब के दोनों ओर से रास्ता था। रात को हवेली के कमरों का प्रकाश तालाव के पानी पर झिलमिल करता था। हवेली के चारो ओर ईंट के खंभों के साथ रेलिंग लगी थी। अंदर वगीचा था। बाद को न वह रेलिंग रही थी और न बगीचा। खंभों की ईंटें तालाव में गिरने लगी थी। शुरू-शुरू में तो हटा दी जाती थी, पर बाद को किसी ने ख्याल नहीं किया। एक बार घराने के एक हिस्सेदार का छोटा लड़का विलायत से इंजीनियरी पास करके आया और ऊँचे वेतन की नौकरी मिल गई उसे। उसके बाद उन हिस्सेदारों ने वालीगंज में नया मकान बना लिया और वहाँ चले गये। फिर धीरे-

धीरे एक एक करके अधिकतर हिस्सेदार जैसे-जैसे मौका मिला चले गये।

उस समय अधर विश्वास बूढ़े हो गये थे। परन्तु तब भी शाम होते ही तालाब के धुँधले घाट के पास जाकर बैठ जाते। शायद गँदले पानी में अपनी परछाँई देखते बैठे-बैठे। दूसरी तरफ पूरब, उत्तर, दक्षिण में बड़े-बड़े मकान बन गये थे। पहले खुला मैदान था हर तरफ। जवानी मे अधर विश्वास वही बैठते थे, वरानगर के दो-चार गणमान्य व्यक्ति भी आकर शामिल हो जाते थे।

अधर विश्वास कहते, कैसी सर्दी पड़ी इस बार चाटुज्जे ?

एक कहता, फूलगोभी के समोसे खाने का मन कर रहा है विश्वास महाशय।

—फूल गोभी के समोसे ?

बस और अधिक नही कहना पड़ता। तभी हुकुम भेज देते अन्दर अधर विश्वास और आधे घंटे मे ही एक कांसे के थाल में करीब सौ समोसे हाजिर हो जाते। कौन कितने खा सकता है, खाओ। और केवल समोसे नहीं, चाय भी आती, फिर कुल्ला करने के लिये पानी आता और सबसे अंत में गुड़ के सदेश आते। सात-साढ़े सात तक उसी ठंड में अड्डा जमा रहता था। अब कोई नही आता था। सिवार भरे तालाब के गँदले पानी में रह-रहकर बुदबुदे उठते थे और फुस से फूट जाते थे। एकटक देखते रहते अधर विश्वास और जब सर्दी बढ़ जाती तो कनटोप पहन लेते। वरानगर में सर्दी ज्यादा पड़ने लगी थी।

अब बगीचे के गुलाबों की देखभाल नहीं होती थी। उस तरफ मोटर रखने के लिये टीन की छत की गराज बन गई थी। गाड़ी खरीदने का शौक नही था अधर विश्वास को। वह सब नये-नये पैसे वालों की चीजें थी—उनके प्रति अधर विश्वास को कभी भी दुर्बलता नहीं थी।

अचानक बगल से मोटर के गुजरते ही अधर विश्वास चौंक पड़े।

—कौन ?

असल में गाड़ी का शौक दूसरे कारण से हुआ था। विलायत से लड़के के इंजीनियर बनकर आने के बाद छोटे भाई ने मोटर खरीदी थी। नई गाड़ी। दूसरे भाइयों की आँखों में चुभी थी वह गाड़ी।

अधर विश्वास ने मुशी से पूछा, कितने की है वह गाड़ी।

मुंशी ने कहा, सुना था सात हजार में आती है।

अधर विश्वास ने कहा, अब मेरी तो उम्र हो गई है—रहने दो।

पत्नी का भी बुढ़ापा आ गया था और फिर गठिया की बीमारी। जीना भी चढ़ उतर नहीं पाती थी उस समय। उन्होने भी एकदक 'ना' तो नहीं की थी। पर एक घर में रहते थे। मँझले, छोटे छाती फुलाकर जाते थे। गाड़ी की आवाज जैसे हृदय पर हथौड़े चलाती थी।

झमझम बारिश पड़ रही थी। सारे बरानगर की सड़कें पानी में डूब गईं थीं। अधर विश्वास घर से निकल नहीं पाते पर छोटा उस बारिश में भी दनदनाता हुआ निकला और गाड़ी लेकर चला गया। गाड़ी होती तो ऐसा नहीं होता, वह भी घर में बन्द नहीं रहते, जहाँ चाहते चले जाते। मन होता तो मित्रों को लेकर कलकत्ता की ओर घूमने निकल जाते। कितनी नई-नई जगह है उस तरफ। बालीगंज में लेक है। नाम सुने हैं बस, जाना नहीं हुआ कभी।

फिर बोले, कौन ?

तेजी से गाड़ी निकल गई। पीछे से बस लड़के का सिर दिखाई दिया। शायद वही गाड़ी लेकर निकला था।

घर आकर पूछा, खोका गाड़ी लेकर गया है ?

निस्तारिणी ने कहा, हाँ।

अधर विश्वास ने फिर प्रश्न किया, कहाँ गया है ?

—यह तो बताकर नही गया।

कुछ क्षण चुप रहकर अधर विश्वास ने फिर पूछा, कहकर क्यों नही गया ? कहकर तो जाना चाहिये, कहाँ जा रहा है। कही नौकरी-चाकरी ढूँढ़ रहा है कि नहीं ?

इसका कोई जवाब नहीं दिया निस्तारिणी ने।

अधर विश्वास ने कहा, तुम जरा कहो ना उससे। कोई नौकरी तो करनी पड़ेगी। मेरी हालत अब पहले जैसी नहीं रही। जानती तो हो कि मल्लिकों का बहुत सूद जमा हो गया है।

इन सब बातों पर निस्तारिणी कभी भी मुँह नही खोलतीं। आय व्यय की ओर उन्होंने जीवन में कभी दृष्टिपात ही नही किया। और अब तो जब से गठिया हुई थी और भी चुप हो गईं थीं दोपहर को जब सारी हवेली कबूतरों की गुटरूँ गूँ-गुटरूँ गूँ की आवाज से गूँजती, तो जैसे वातावरण मुखर हो उठता। उन्हें लगता जैसे छत उनके सर पर गिर जायेगी। बगल के कमरे में अधर विश्वास सोते रहते।

उनके पलंग के पास जाकर कहतीं, सुनते हो !

अधर विश्वास खर्राटें ले रहे होते ।

वह फिर कहतीं, मैंने कहा, सुनते हो—

नींद में ही वह कहते, हूँ—

—मकान गिर तो नहीं जायेगा ?

लेकिन दूसरी तरफ से कोई जवाब नहीं आता । अधर विश्वास के खर्राटें तब तक और तेज हो गये होते ।

परन्तु उस दिन तालाब के किनारे से सुर्खी बिछे रास्ते पर एक और मोटर आते देखकर बरानगर के निवासी आश्चर्य में पड़ गये थे। सबसे पहले पनवाड़ी की दुकान पर खड़े निताई हालदार की नजर पड़ी थी उस पर ।

आश्चर्य से कहा था, अरे, यह गाड़ी किसकी है रे भूषण ?

भूषण पनवाड़ी ने कहा था, आपको नहीं मालूम, अधर विश्वास की गाड़ी है !

अधर विश्वास की ! तो आदमी के पास पैसा है ! दस-बारह हजार से कम की तो गाड़ी आती नहीं ! अभी बुड्ढे ने पैसा दबा रक्खा है । सब सोच रहे थे कि विश्वास वंश की हालत खराब हो गई है ।

भूषण बोला, मरा हाथी भी लाख का होता है, समझे निताई बाबू, अभी विश्वासों के लिये दो चार गाड़ी खरीदना मामूली बात है ।

—कैसे ?

भूषण ने कहा, अभी भी उस घर में दो रुपये के पान के बीड़े बेचता हूँ रोज, पता है !

—दो रुपये के पान ?

—हाँ, दो रुपये के पान, चार पैसे का एक बीड़ा । रोज दोपहर को दरवान आकर ले जाता है ।

बात गाड़ी खरीदने से शुरू हुई थी । उसी से सबका माथा ठनका था—नहीं, जो सोच रहे थे, वह सच नहीं था । सचमुच मरा हाथी लाख रुपये का होता है। छोटे बाबू लड़के की कमाई से और मँझले बाबू ससुर की दौलत से बड़े आदमी बन गये थे, पर बड़े बाबू ? अधर विश्वास ? उनका भी अभी मूल्य है, यह बात तो किसी के दिमाग में आई ही नहीं ।

नौकर मछली खरीदने बाजार गया तो निताई हालदार ने पास जाकर दोस्ती करते हुए पूछा, कौन-सी मछली खरीदी रे भूतो !

थैला खोलकर दिखाई भूतो ने—डेढ़ सेर वजन की रोहू मछली खरीदी दी उसने।

—कितने पैसे लिये ?

—साढ़े चार रुपये।

भौचक रह गया निताई हालदार। साढ़े चार रुपये की मछली। फिर आलू, बैंगन, परवल, साग भाजी अलग। खाने वाले तो तीन ही है—अधर विश्वास, उनकी पत्नी और लड़का ! काम-धाम करता नहीं लड़का। इतनी खरीदारी होती कहाँ से है ? जरूर बुड्ढे ने पैसा दाब रक्खा है। फटा अलवान ओढ़े रहता है तो क्या हुआ ! लड़का तो कोट पैंट पहनकर गाड़ी लेकर सैर-सपाटे को निकल जाता है और रात गये आता है। सुरकी पर पहियों की और गराज के टोन के फाटक खुलने की आवाज से लोगों को उसके लौटने की खबर मिल जाती थी।

निताई हालदार कहता, तुम लोग जैसा सोचते हो, वैसा नहीं है जी, बूढे के पास पैसा है।

केशव बांड़ुज्जे कहता, रुपया नहीं होता तो गाड़ी कहाँ से आती ?

भूपण कहता, जी हाँ, अभी भी नकद दो रुपये के पान जाते है अंदर—महीने में साठ रुपये के पान !

उन्ही दिनों एक घटना हुई।

रविवार का दिन था और सुबह का वक्त। मुहल्ले मे घरों के बाहर चबूतरों पर अड्डेबाजी हो रही थी। खाने की किसी को जल्दी नही थी।

अखबार की खबरों को लेकर आपस में बहस हो रही थी। तभी एक सज्जन एक चबूतरे के सामने आकर खड़े हो गये। चुस्त-दुरुस्त पोशाक, बालों में टेढ़ी माँग और धोती का कोंछा मुट्ठी में। पान खा रहे थे।

नमस्कार करके आगे बढ़कर बोले, आप लोगों से एक बात पूछ सकता हूँ ?

सामने से अखबार हटाकर निताई हालदार बोला, पूछिये।

उस सज्जन के आ जाने से सब लोग चुप हो गये थे। अब सीधे होकर बैठ गये।

उन्होंने कहा, मेरा नाम मधुसूदन सेन है, हम लोग दक्षिणराढ़ी कायस्थ है। अपनी बहन के रिश्ते के मामले में आया हूँ। आप लोग अगर सहायता करें तो बड़ा उपकार मानूंगा।

बस्ते से एक ओर खिसक कर बगल में जगह बनाते हुए निताई हालदार बोला, बैठिये सर, यहाँ बैठिये, बैठकर बातें करिये ।

बैठ गये मधुसूदन बाबू । बोले, मैं यहाँ के भैरव मल्लिक लेन वाले विश्वास घराने के बारे में जाँच-पड़ताल करने आया हूँ, आप लोग पड़ोसी हैं, आशा है सब कुछ जानते होंगे । बहन के रिश्ते की बात है—समझ सकते हैं । मेरी बहन है इसलिये नहीं कह रहा महाशय, पर ऐसी लड़की हजारों में नहीं मिल सकती, मेरी माँ अभी जीवित हैं । मरने के पहले पिताजी बहन के विवाह के लिये रुपया भी छोड़ गये हैं ।

निताई हालदार बोला, विश्वास घराने के किस लड़के से संबंध कर रहे हैं ?

केशव बाड़ुज्जे बोला, छोटे बाबू के बारे में पूछ रहे हैं, पर वह लोग तो अब यहाँ नहीं रहते । लड़का बहुत अच्छा है, ऊँची नौकरी है, विलायत से इंजीनियर बनकर आया है । हम तो यही कह सकते हैं, लड़का ज्वेल है, ज्वेल—माने हीरे का टुकड़ा ।

मधुसूदन बाबू बोले, उस लड़के की बात नहीं कर रहा, मैं बड़े बाबू अधर विश्वास के लड़के के बारे में पूछ रहा हूँ । उसका नाम···

निताई हालदार ने एकदम से कहा, समझ गया, समर विश्वास की बात कर रहे हैं न ?

मधुसूदन बाबू बोले, यहाँ भी हम पैसा लगायेंगे । मैं तो बस यह जानने आया था कि इनकी हालत कैसी है, और कुछ नहीं । आप लोग समझ ही सकते है—इतना रुपया लगाकर बहन की शादी कर रहा हूँ, अन्त में कहीं—

हो-हो करके हँस उठा निताई हालदार ।

मधुसूदन बाबू बोले, हँस क्यों रहे है ?

निताई हालदार ने कहा, आप बात ही ऐसी कर रहे हैं महाशय । अभी चार दिन पहले ही तो बारह हजार की गाड़ी खरीदी है । आज भी विश्वासगिन्नी के लिये भूषण की दुकान से प्रतिदिन दो रुपये के जोड़े जाते हैं, पता है ? रोज दो रुपये के पान, कोई ऐसी-वैसी बात नहीं है । विश्वास न हो तो वो सामने वाली पान की दुकान के मालिक से पूछ लीजिये ।

इस पर कुछ नहीं कहा मधुसूदन बाबू ने ।

जरा रुककर बोले, घटक तो यही कह रहा था, पर उसकी सारी बातों का विश्वास तो नहीं किया जा सकता।

निताई हालदार बोला, रोज सुबह दस रुपये की साग भाजी मछली आती है रसोई में और यह मैंने अपनी आँखों से देखा हूँ, कानों सुनी नहीं कह रहा। अब बताइये कि इन बातों के अलावा क्या जानना चाहते है ?

उस दिन और ज्यादा बात नहीं हुई। यह सब सुनकर मधुसूदन बाबू चले गये थे। लड़का कैसा था, यह नहीं जानना चाहा था उन्होंने—उसके बारे मे क्या पूछना भला! करैत साँप का बच्चा था—साँपों में साँप। नहीं-नहीं करते भी एक घंटे के नोटिस मे लोहे का सन्दूक खोल कर लाख रुपया निकाल सकता था! विश्वास घराना—कहावत बन गया था! वहाँ आने पर जिस घर में लाट साहब खाना खाने आते थे, वह घराना था!

एक दिन धूम-धाम शुरू हो गई। सारे घर की पुताई शुरू हुई, तालाब की सेवार निकाली गई। मोटर बार-बार जाती-आती। मुंशी जी कान में कलम लगाये भाग दौड़ करने लगे।

अधर विश्वास अपनी दिनचर्या के अनुसार शाम को तालाब पर आकर बैठते और चार-पाँच आदमी हाथ बाँधे उनके चारों ओर खड़े रहते। सड़क से ही सब दिखाई देता। घाट पर बड़े-बड़े टोकरों में पराँत-पतीले माँजने-धोने को आते। बड़े-बड़े हंडों में दही, मिठाई, मछली आती।

गाड़ी अधर विश्वास के स्वयं के आने-जाने के लिये खरीदी गई थी। लेकिन डाक्टर ने मना कर दिया था।

कहा था, गाड़ी के जर्क आपसे वर्दाश्त नहीं होंगे।

—तो फिर ? गाड़ी यूँ ही बेकार खरीदी।

डाक्टर ने कहा था, गाड़ी जान से ज्यादा है क्या ? ठीक हो जाइये, तब गाड़ी में घूमियेगा।

और वास्तव में बेचारे अधर विश्वास गाड़ी में एक बार भी नही बैठ पाये। खरीदने का शौक ही पूरा हुआ बस। अलवान ओढ़कर तालाब के किनारे जाकर बैठते और हवा खाते। निस्तारिणी भी कभी नहीं बैठी।

समर कहता, माँ, कहीं घूमने चलोगी ?

वह कहतीं, मैं कहाँ जाऊँगी बेटा। मेरी तो यह गठिया की बीमारी ही पीछा नहीं छोड़ती।

वह कहता—घूमतीं तो गठिया ठीक हो जाती तुम्हारी।

इस पर वह कहतीं, वो ठीक हो जायें, तब जाऊँगी किसी दिन।

—तो फिर मैं ही जाऊँ ? समर पूछता।

—जाओ।

बस इतना। वह कहाँ जा रहा था, क्यों जा रहा था, यह कभी नहीं पूछा किसी ने समर से। बचपन में वह मामा के घर रहकर पढ़ा था —फिर जरा बड़ा होने पर बरानगर आया था। मुहल्ले के लड़कों के साथ कभी उसे मिलने-जुलने नहीं दिया गया। बचपन में एक नौकर था उसके लिये—विधुवदन नाम था।

नौकरानी कपड़े लत्ते पहनाकर तैयार कर देती। उसी पर उसकी सारी देखभाल की जिम्मेदारी थी। सुबह से रात तक उसके साथ परछाईं की तरह लगी रहती वह। घर ही उसकी दुनिया थी बस—इस कमरे से उस कमरे में और बाहरी ड्योढ़ी से अन्दर की ड्योढ़ी। विधु को साथ लिये बिना कहीं बाहर निकलना मना था। पर बाहर जाने की उसे जरूरत भी नहीं पड़ी कभी। इतना बड़ा मकान था—वही एक दुनिया थी—बहुत बच्चे थे घर में।

बसन्त छोटे बालों का था।

वह कहता, ए···लुकाछिपी खेलेगा ?

समर कहता खेलूँगा।

बसन्त कहता, मैं छुपूँगा और तू मुझे ढूँढ़ना।

फिर बसन्त जाकर छुप जाता और समर उसे ढूँढ़ता। इस तरफ, उस तरफ, जीने में, छत पर, दालानों के कोनों में रक्खी बड़ी-बड़ी आलमारियों और सन्दूकों के आस-पास। पूरब की ओर बरामदे के पास पानी के बड़े-बड़े कलसे रखने के लिये मिट्टी की पलहंडियाँ बनी हुई थीं। रात को टिमटिमाती रोशनी में उनको देखकर बड़ा डर लगता था। लगता जैसे हौआ ताक लगाये छुपा बैठा था।

बसन्त कहता, ए···समर, बाग में चलेगा ?

—बाग में ? वह पूछता।

बचपन में उसे बगीचे में भी जाना मना था। रात को इमली में घने पेड़ की डालियों को देखकर थुरथुरी छूटती थी। दिन में भी डर लगता

था। माली काम करते होते। बगीचे की उत्तर की तरफ एक विला-यती आमड़े का पेड़ था, उसकी डाल पर बुलबुल का घोंसला था। विधु के साथ घूमने जाता था तो कितनी बार चकित दृष्टि से उस ओर देखा था उसने। पूँछ के नीचे का हिस्सा कैसा लाल सुर्ख था। आदमी के पैरों की आवाज सुनते ही पंछी फुर्र से उड़ जाता था। आमड़े के पेड़ के पास ही एक सहजन का पेड़ था। कभी तो सारे पत्ते झाड़कर पेड़ बिल्कुल नगे हो जाते और कभी कोमल पत्तों से भर उठते।

बीच-बीच मे सावधान करता विधु, उधर मत जाना खोका बाबू, साँप है उधर पानी पर तैरने वाला साँप।

तालाब मे थे पानी के साँप, जो पानी पर फन उठाकर तैरते रहते थे। रात को सोते-सोते भी सपने में उन्हें देखकर चीख उठता समर—साँप-साँप-साप!

बिन्दु नौकरानी पास ही सोती थी। झट से उठकर पीठ सहलाते हुए पूछती, क्या हुआ खोका बाबू, क्या हुआ?

फिर से थपककर सुला देती वह उसे। गहरी नीद सो जाता वह—सुबह सोकर उठने पर रात के सपने की याद भी नहीं रहती। उसके सोकर उठने तक सारा घर मुखर हो उठा होता। नीचे सरकार महा-शय के कमरे में लोग इकट्ठे होने लगते। पीछे के हिस्सों में कहारिन महरी बर्तनों का ढेर माँजना, पानी भरना शुरू कर चुकी होती। घर मे झाड़-पोछ जोर-शोर से चल रही होती। रसोई मे दरवाजे पर साग-भाजी-मछली के थैले पड़े होते, चूल्हों पर बड़े-बड़े तांबे के हंडे चढ़े होते, पद्मबुआ सिल पत्थर लेकर मसाला पीस रही होती।

वह कहती, यह लो खोका बाबू—मसाला लेना हो तो लो।

जब आस पास कोई नहीं होता तो वह मसाला देती थी उसे—पिसी हल्दी का मसाला। फिर बिन्दु से तालाब के किनारे से गीली मिट्टी मँगाकर गुड़िया बनती और हल्दी से रँगी जाती। उसके बाद उसकी पूजा होती। पूजा में नैवेद्य, प्रसाद सब होता, रसोई से मूली, केला लाकर काटकर सजाते।

खोका बाबू पूछते, प्रसाद नही खायेगी?

बिन्दु खाती, विधुवदन खाता। और वास्तव में खाते थे या फेंक देते थे कौन जाने!

समर पूछता, मीठा लगा?

बिन्दु कहती, हाँ।

यही सवाल विधुवदन से दोहराता वह तो विधु भी सिर हिला देता।

इसे नई बहू की ही तकदीर कहनी चाहिये और क्या! नई बहू। मोटर में बैठते समय ठीक से, कुछ देख ही नहीं पाई। देखने का मौका ही नहीं मिला, घूँघट पड़ा हुआ था। गाड़ी के फाटक पर आकर रुकते ही नौबत बज उठी, शंख बजा, उलू ध्वनि हुई। फिर कुछ पता ही नही लगा। लोगों की भीड़ में रीति-रिवाजों के आडम्बर में कुछ सोचने का समय ही नहीं मिला। भारी साड़ी, गहने और घूँघट के बोझ से चेतना-हीन हो गई थी जैसे। एक-एक जना आता-जाता और वह पैर छूती जाती। सभी ने चौमुख प्रशंसा की थी बहू की—

किसी ने कहा था, चाँद सी बहू आई है खोका की।

तो दूसरा बोला था, बाप नहीं है तो क्या, जी खोलकर दिया है भाई ने भी।

पीछे से सुनाई पड़ा था, फूलशय्या का सामान देखने लायक है मौसी—दो सेट तो सोने के हैं।

किसी का भी मुँह दिखाई नहीं दिया था उसे, बस बातें कानों मे पहुँच रही थीं।

किसी को कहते सुना था—ए""समर, तू भागा-भागा कहाँ फिर रहा है, बहू के पास खड़ा हो आकर, जरा दोनों की जोड़ी तो देखें।

फूलशय्या की रात एक-एक करके सब लोग कमरे से चले गये थे। एक टेबिल पर रखखा लैम्प टिमटिमा रहा था। पलंग फूलों से ढका था और बहू एक कोने पर सिकुड़ी-सिमटी, सिर झुकाये बैठी थी।

समर पास सरक आया।

बोला, तुम लेट जाओ।

नई बहू—भारी साड़ी के घूँघट में से मुँह दिखाई नही दे रहा था, बस कान और गले के जेवर चमक रहे थे। वैसी ही निस्पंद बैठी रही वह, मानों समर की बात उसके कानों तक पहुँची ही नहीं।

समर फिर बोला, आज बड़ा परिश्रम पड़ गया तुम पर। नींद आ रही हो तो सो जाओ। बत्ती बुझा देता हूँ मैं।

सोचा था, बत्ती बुझाने की बात पर शायद वहू कुछ बोलेगी, और बोलेगी नहीं तो कम से कम हिलेगी-डुलेगी अवश्य। पर कुछ भी नहीं किया कनकलता ने—न बोली और न हिली-डुली।

समर ने पूछा, तुम्हारा नाम कनकलता है?

वह उसी तरह चुप—हाँ-ना कुछ भी नहीं कहा।

समर ने पूछा, तुम्हारा पुकारने का नाम नहीं है?

इस बार कनकलता ने सिर हिला दिया।

समर ने फिर पूछा, तो फिर क्या कहकर बुलाऊँ मैं तुम्हें? इतना बड़ा नाम लेकर तो बुलाया नहीं जायेगा।

कनकलता का सिर हिला जरा सा। शायद हँसी आ गई थी उसे।

समर के झट से घूँघट उलटते ही उसने आँखें बन्द कर लीं। समर ने देखा वह हँस नहीं रही थी, वरन् उसकी आँखों से आँसू टपाटप गिर रहे थे।

अपनी धोती के कोने से वहू की आँखें पोंछ दी समर ने और बोला यह क्या, रो क्यों रही हो कनक? आज के दिन क्या कोई रोता है।

आँखें बन्द किये-किये सरक कर बैठने का प्रयत्न किया कनक ने।

समर ने दोनों हाथों में कसकर उसका मुँह पकड़ लिया।

बोला, छिः, रोती क्यों हो? अपनी सुहागरात को भी कोई रोता है?

फिर जाने उसके मन में क्या आया कि कनक का मुँह छोड़कर वहाँ से उठ गया और पलंग से हटकर कुर्सी पर बैठ गया। अगर ऐसी बात हो तो! कनक तो पढ़ी-लिखी लड़की है, रोने की उमर तो रही नहीं उसकी। बहनों के विवाह देखे थे उसने, वह लोग तो बहुत छोटी थीं विवाह के समय—इसीलिये रोते-रोते ससुराल गई थीं।

वहीं बैठे-बैठे फिर पूछा समर ने—सच-सच बताओ, क्यों रो रही हो कनक?

यह सुनकर कनक का रोना और तेज हो गया। साड़ी का पल्ला आँखों पर लगाकर फफक-फफक कर रोने लगी वह।

—बोलो न, क्यों रो रही हो?

बहुत खुशामद की थी उस दिन समर ने। वर्षों बाद भी समर को उस रात की एक-एक बात याद थी—जीवन की स्मरणीय रात की स्मृति।

अन्त में समर ने पूछा था, मैं पसन्द नहीं हूँ तुम्हें, क्यों ? सच-सच बताओ।

मिसेज दास के साथ जब समर की अच्छी घनिष्ठता हो गई थी, तब उन्होंने भी पूछा था, तुमने बस उस रात को ही अपनी बहू को देखा था ?

—हाँ, समर ने कहा था।

मिसेज दास ने कहा था, क्यों रो रही थी, इसका जवाब मिला था ?

समर ने कहा था, सही कारण आज तक नहीं जान पाया मैं।

मिसेज दास ने पूछा था, फिर क्या हुआ ?

—फिर मैं कनक के पास जाकर बैठ गया और उसका एक हाथ खींचकर हाथों में ले लिया। कितना नरम हाथ था, याद [illegible] है मुझे। बहुत बार रात को अपना बायाँ हाथ दाहिने हाथ से [illegible] देखता हूँ, ऐसा लगता है जैसे कनक का हाथ दबा रहा हूँ, [illegible] दबाया था। पर तुरत जैसे कोई ठोस धरती पर पटक देता है। [illegible] उसका हाथ ! कई बार तो सारी-सारी रात नींद नहीं [illegible] किये रोता रहता हूँ।

और यह कहते-कहते वह सचमुच ही बच्चे की [illegible]।

सामने झुककर मिसेज दास ने अपनी [illegible] से समर की आँखें पोंछते हुए कहा, ना, [illegible] क्या पियोगे ? बड़े वीक हो तुम, बहुत [illegible] स्ट्रांग चाय लाने को कहूँ ?

अब्दुल मिसेज दास का [illegible]।

समर बोला, नहीं मिसेज दास, मैं [illegible] परेशान करता हूँ—अब चलूँगा।

एकदम से मिसेज दास [illegible], नहीं, नहीं, [illegible] क्यों ? मैं तो [illegible] भी परेशान नहीं होती। [illegible] मुझे ! तुम्हारा कष्ट [illegible] है। [illegible] नहीं काफी लाने को कहती हूँ।

और मधुर स्वर में [illegible], अब्दुल।

समर ने कहा, आपके पैर पड़ता हूँ मिसेज दास, ये सब बातें मिस्टर दास को मत बताइयेगा।

—क्यों, बताने में क्या हुआ। मैं और मिस्टर दास क्या अलग हैं ?

—अलग तो नहीं हैं, लेकिन अपने मन की बात जिस तरह आपके सामने खोलकर कह सकता हूँ, वैसे और किसी से नहीं कह सकता। और आपके अलावा कोई समझ भी नहीं पायेगा—हँसेंगे सब सुनकर। एक थर्ड क्लास मेस में रहता हूँ मैं। वहाँ कोई नहीं जानता कि मैं बरानगर के विश्वास घराने का लड़का हूँ। उन्हें नहीं मालूम कि कभी मैं अपनी खुद की गाड़ी चलाता था। एक जमाना था, जब गवर्नर हमारे घर खाना खाने आता था। आपके अलावा किसी को मैंने यह सब नही बताया। कहने से विश्वास भी कौन करेगा।

समर की पीठ सहलाते हुए मिसेज दास ने कहा, सचमुच, तुम्हारे लिये बड़ा अफसोस होता है समर—काफी में चीनी ठीक है ?

काफी का घूंट सटक कर समर बोला, हाँ, ठीक है।

दो पल उपरान्त सान्त्वना भरे स्वर में मिसेज दास बोली, तुम बड़े सेन्टीमेन्टल हो समर। इतना सेन्टीमेन्टल होने से कहीं दुनिया में गुजारा है ?

फिर जरा रुककर पूछा, तुम क्या विवाह से पहले किसी के लव में पड़े थे ? याने किसी को प्यार किया था तुमने ?

मिसेज दास की ओर देखा समर ने।

वह बोली, नहीं नहीं, मुझसे शर्म मत करो। मैं तो तुम्हारी वेल-विशर हूँ—मैं तो तुम्हारा भला ही चाहती हूँ। तुम्हारे पास क्या नहीं था—घर, गाड़ी, नौकर-चाकर, वक्त सभी कुछ तो था और खूबसूरत भी थे—किसी को प्यार नहीं किया ?

समर बोला, मुग्ध तो बहुतों को देखकर हुआ था मैं, पर प्यार से आपका क्या मतलब है, मैं समझा नही।

हँसी नहीं मिसेज दास। उसी तरह मधुर स्वर मे बोलीं, प्यार नहीं जानते ?

समर ने कहा, सच कह रहा हूँ मिसेज दास, आपसे परिचय होने से पहले प्यार किसे कहते है, मैं नहीं जानता था।

खिलखिला कर हँस पड़ीं मिसेज दास।

बोली, दुर, पगला कहीं का। मेरा प्यार क्या वह प्यार है ? मैं इस प्यार की बात नहीं कर रही।

मिसेज दास की उम्र काफी थी। समर से कम से कम सात साल बड़ी थीं। पर पाउडर, लिपिस्टिक, रूज से सजी सँवरी, रेशमी पोशाक पहने हरवक्त टिपटाप रहती थीं।

हल्के स्वर में हँसकर उन्होंने पुनः कहा, मैं इस प्यार की बात नहीं कर रही। कम उम्र के लड़के-लड़कियों के आपसी आकर्षण की बात कर रही हूँ। विवाह से पहले किसी से प्यार नहीं हुआ था ? किसी को लेकर सिनेमा नहीं गये—किसी लड़की के साथ ?

याद करके समर ने कहा, नहीं।

— किसी का चुम्बन नहीं लिया ?

मिसेज दास ने यह हालांकि सहज स्वर में ही पूछा था, पर समर के कान तक लाल हो गये, रक्त-प्रवाह एकदम से जैसे तेज हो गया। कुछ भी नहीं बोल पाया वह।

मिसेज दास बोलीं, शर्म की क्या बात है ? मुझे बताने में कैसी शर्म ? मैं तो किसी दूसरी वजह से पूछ रही थी।

सिर झुकाये हुए समर ने कहा, नहीं।

—किसी का भी नही ?

—इच्छा तो हुई थी, पर·····

—कनक का ?

कनक का चुम्बन बस सुहागरात को लिया था। इतना कहते-कहते समर जैसे हाँफ उठा।

मिसेज दास ने कहा, बिल्कुल ठीक किया था, हसबैण्ड का काम ही किया था। लेकिन उसके बाद उसका रोना थम गया था ?

—हाँ, रोना थम गया था।

—थमता कैसे नहीं ! अभिज्ञता भरे स्वर में मिसेज दास ने कहा।

समर ने आश्चर्य से पूछा, आपने कैसे जाना ?

—मुझे मालूम है। मैं खुद औरत हूँ, यह नहीं जानँगी ! चलो छोड़ो फिर ?

फिर ?

मिसेज दास से परिचय होने के वाद से समर अपनी हर अन्तरंग बात उन्हें बताने लगा था। उससे पहले कभी किसी को नहीं बता पाया है

था। माधव सिकदार लेन के मेस में आने के बाद वह बिल्कुल बदल गया था। पूरा मेस बड़ा ही गंदा लगता उसे। सारा दिन आफिस के बंद कमरे में गुजारने के बाद एस्प्लेनेड की खुली हवा में आकर जरा जान में जान आती जैसे। दूसरी ओर कर्जन पार्क, फिर ईडेन गार्डन्स और फिर गंगा। निरुद्देश्य, अपने में खोया घूमता रहता वह। कभी-कभी हार्न बजाकर सावधान करती हुई कोई नई गाड़ी बगल से सर्र से निकल जाती। चौंककर दो कदम पीछे हट जाता वह और जाती गाड़ी की ओर देखने लगता और सोचता, ड्राइविंग नहीं आती ठीक से, शायद नई-नई सीखी है। फिर आगे चल पड़ता, मूँगफली खरीदता और खाते-खाते टहलता रहता। जैसे मेस न लौटना पड़े तो अच्छा हो, वापस लौटने का जी ही नहीं चाहता था।—फिर वही माधव सिकदार लेन। फिर वही लिपटा बिस्तर खोलकर चित होना। छत पर धुएँ के छल्ले, दीवालों पर मकड़ियों के जाले और रसोई से निकलता दम घोटूं धुआँ।

रसोइया पूछता, बाबू, कल खाना नहीं खाया ?

वह कहता, भूख नहीं थी, वह खाना भिखारी को दे देना।

रसोइया सब समझता था। कहता, बाबू, आप लोगों को यह खाना भला कैसे भायेगा !

समर के हाव-भाव, चाल-चलन, बख्शीश देने से वह समझ गया कि किसी बड़े घर का लड़का था वह, भाग्य के फेर से मेस में रह रहा था।

पूजा के समय दस रुपये का नोट बख्शीश मिलने पर रसोइये ने कहा था, अभी तुड़ाकर ले आता हूँ।

समर ने जवाब दिया था, नहीं, तुड़ाकर लाने की जरूरत नहीं है ठाकुर। वह पूरा ही तुम्हारा पूजा का इनाम है।

मेस में रहनेवाले करीब-करीब सभी लोग हर शनिवार को घर चले जाते। रविवार को मेस सुनसान हो जाता।

रसोइया कभी-कभी पूछ लेता, आपका घर कहाँ है बाबू ?

—घर ?

समर कहता, क्यों, यह क्यों पूछ रहे हो ठाकुर ?

—सब घर जाते हैं, छुट्टी बिताकर आते है, आप कभी कही नहीं जाते।

विषय बदलकर अचानक समर कहता, [illegible] क्या ठाकुर आज बाजार मछली [illegible]

—खाइये न बाबू, कोई नहीं है, इसलिये आपको दे दी ।

समर पूछता, तुम लोगों के लिये तो है न ?

और कहाँ बिन्दु खुशामद कर करके खिलाती थी । विधु ने जाने कितनी बार डर दिखाकर दूध पिलाया था और अब देखने को भी नहीं मिलता था। घर पर गाय बँधी थी—आठ सेर रोज का होता था। पिता ही एक सेर रोज पीते थे । उसके अलावा, दही, छेना, मिठाइयाँ सब घर में ही बनता था ।

माँ कहा करती, ए···खोका, खायेगा नही, उठ क्यों गया ? मालपुआ खाता जा ।

—अब नहीं खाया जायेगा माँ, पेट भर गया ।

—तो शाम को चाय के साथ खा लेना, रक्खे दे रही हूँ ।

और शाम को ! शाम आती तब तो ! कहाँ बरानगर और कहाँ विद्यासागर कालेज। एक छोर से दूसरा छोर। कैन्टीन, रेस्टोरेंट, कामन रूम, जाने कहाँ सारा दिन निकल जाता । फिर शाम आती । 'महत्-आश्रम' के गरम-गरम चाप कटलेट खाकर पेट भर जाता, घर की बात याद ही नहीं आती। इसी तरह कैसे दिन, रात, महीने, साल बीत जाते, पता ही नहीं चलता। फिर अचानक एक दिन गाड़ी खरीदी गई।

अधर विश्वास ने स्वयं पसन्द करके गाड़ी खरीदी थी, पर बैठे एक दिन भी नहीं । हार्ट बहुत कमजोर था—डाक्टर ने गाड़ी में जाने-आने को मना कर दिया था। माँ भी चढ़ने को तैयार नहीं थीं।

बोली थी, रहने दो, गाड़ी-वाड़ी में नहीं बैठना मुझे, वो ठीक हो जायें पहले ।

वही गाड़ी उसके हाथ में आ गई थी। शुरू-शुरू में एक महीना ड्राइवर था, उसी की बगल में बैठकर स्टीयरिंग पर खुले मैदान में हाथ साधा था उसने । फिर तो न दिन रहा और न रात । कभी यशोहर रोड पर सीधा नजर की सीध में दौड़ता जाता तो कभी ग्रांडट्रंक रोड पर बेखबर गाड़ी भगाता ।

रोज कभी किसी के घर तो कभी किसी के ।

बरानगर के लोग मुँह बाये गाड़ी की ओर देखते।

भूषण की दुकान पर पान बीड़ी खरीदने ग्राहक खड़े होते । एक कहता, पहले मुझे दे भूषण । तो दूसरा कहता, पहले मुझे दे, आफिस को देर हो रही है मुझे

तीसरा कुछ कहता उससे पहले ही अधर विश्वास की गाड़ी जोर से हार्न बजाकर बगल से धूल उड़ाती चली जाती।

निताई हालदार कहता, कौन था रे ? किसकी गाड़ी थी ?

फिर स्वयं ही समझकर कहता, ओ···विश्वास बाबू का लड़का था। बाबा, हालत खराब होने से भी क्या होगा—मरा हाथी भी लाख का है—मैंने कहा था न केशव तुझसे। तू कह रहा था कि उनका मकान बिकने वाला है—

केशव बाँड़ुज्जे कहता, तूने भलो न कहा हो, पर मुहल्ले में तो सब यही कहते थे। मैंने तो अभी उस दिन अधर विश्वास के नौकर को दस रुपये की साग-भाजी-मछली खरीदते देखा था, समझे—

भूषण कहता, अरे, मेरे यहाँ से तो अभी भी दो रुपये रोज यानी नकद साठ रुपये महीने के पान जाते है—

लेकिन उसी विश्वास-घराने की यह नौबत आयेगी, यह कौन जानता था !

शादी तय हुई तो घर तालाब की मरम्मत हुई, सफाई हुई, रंग रोगन हुआ, नाते रिश्तेदार आये, शहर के गणमान्य लोग भी निमन्त्रित हुए, बगीचे में नौबत वाले बैठे और फिर गाजे-बाजे के साथ सात बसों में भर कर बरात वृन्दावन लेन गई। वहाँ भी खूब खातिर हुई।

मुहल्ले के भी सब गये थे—निताई हालदार, केशव बाँड़ुज्जे कोई भी तो नहीं छूटा था।

तृप्त होकर पान चबाते हुए निताई हालदार ने कहा था, पोना मछली का कलिया बहुत बढ़िया बना था, क्यों ?

निताई ने कहा था, और दही ? असली मुल्ला के चौक का था।

केशव ने कहा था, पान भी बड़ा मीठा है रे, मीठा पान, जरा भी झलझलाहट नहीं है।

भूषण ने बताया था, बहू भात के दिन के लिये मुझे विश्वास के यहाँ से पाँच हजार बीड़ों का आर्डर मिला है।

इतने में कन्या के भाई उन्हीं मधुसूदन सेन से सामना हो गया था। हाथ जोड़कर उन्होंने खुश होकर पूछा था—

सब ठीक रहा न ? अकेली जान, हर तरफ देख नहीं पाया।

निताई हालदार ने कहा था, मैंने तो आपसे तभी कहा था सेन महाशय। मनचीता समधियाना मिलेगा—क्यों, नहीं कहा था ?

मधुसूदन बाबू ने जवाब दिया था, हाँ, आपने ठीक कहा था, विश्वास महाशय सज्जन पुरुष हैं, एक पैसा दहेज नहीं लिया। कह दिया, विश्वास वंश में दहेज लेना पाप समझा जाता है। इसलिये पिताजी जितना भी रुपया बहन के विवाह के लिये छोड़ गये थे, सबका जेवर-कपड़ा व सामान बना दिया।

वास्तव में अधर विश्वास ने एक पैसा भी नकद नहीं लिया था। वह क्या लड़का बेच रहे थे, जो दहेज लेंगे ! दहेज तो वो लेते हैं जो दो पीढ़ियों के अमीर हैं।

परन्तु विपत्ति आई सुहागरात के दिन। बहूभात के लिये लोगों का जमघट लगा हुआ था। ड्योढ़ी पर नौबत बज रही थी। एक एक पंगत बैठती और खाकर उठ रही थी। घर के अन्दर नई बहू को सजाकर चौकी पर बैठाया हुआ था। बिल्कुल लक्ष्मी लग रही थी बहू। अब घर में रौनक हो जायेगी। कुटुम्ब के कुछ लोग अलग मकान बनाकर रहने चले गये थे और कुछ मर गये थे। एक अधर विश्वास बाकी बचे थे जो तेल खत्म हुए दिये की बत्ती की तरह टिमटिमा रहे थे। लोग सोचते थे, बस गिरने वाले हैं यह लोग, अब कोई आशा नहीं इनके उठने की। घर भी ढहेगा और बाकी सब भी बिक जायेगा। फिर जैसा ऐसे में होता है, वही होगा।

पर पहला भ्रम तो तब टूटा, जब अधर विश्वास ने गाड़ी खरीदी।

मुंशी जी ने एकबार पूछा था, इस समय गाड़ी खरीदेंगे मालिक?

अधर विश्वास ने कहा था, हाँ, गाड़ी खरीदे बिना सम्मान नहीं रहेगा।

—जी, पर गाड़ी की कीमत तो देखिये !

लापरवाही से अधर विश्वास ने कहा था, उसकी फिकर तुम्हें नहीं करनी पड़ेगी। मै अभी जिन्दा हूँ।

समर भी खबर सुनकर स्तंभित रह गया था। अंत में जब वास्तव में गाड़ी आकर खड़ी हो गई थी, तो सच माना था। निस्तारिणी खा-पीकर आराम कर रही थीं। लड़के ने जाकर पूछा, माँ, गाड़ी आ गई !

निस्तारिणी ने उदासीन होकर कहा था, तो मुझसे क्या पूछ रहा है, जिनकी गाड़ी है उनसे पूछ।

गाड़ी आई जरूर, लेकिन अधर विश्वास बैठ नहीं पाये। उसी दिन से तबियत खराब हो गई थी। धीरे-धीरे शरीर का ह्रास होने लगा था।

समर पूछता तो निस्तारिणी कहती, तुझे गाड़ी चलाने का शौक है तो उनसे कह न जाकर।

परन्तु उनके सामने जाकर कहने का साहस कहाँ था।

अंत में निस्तारिणी ने भी कहा था। कहा था, गाड़ी तो यूँ ही खड़ी रहती है—खोका कह रहा था—

आँखें बंद किये लेटे थे अधर विश्वास। आँखें खोलकर उनकी ओर देखा पर मुँह से कुछ नहीं कहा था। वह समझ गई थीं कि नाराज नहीं हुए थे वह। लड़का अगर चलाना चाहता है तो चलाये। वह अब कितने दिन के हैं।

आखिर एक दिन लड़के ने ही गाड़ी निकाली। तेल खरीदने को पैसे निस्तारिणी ने दिये थे।

फिर तो बस निस्तारिणी के पास जाकर मुँह से 'माँ' कहने भर से हो जाता था। वह समझ जाती थीं। कहतीं, क्यों, तेल खत्म हो गया है?

यह कहकर आँचल में बँधी चाबी से सन्दूक खोलकर रुपये निकाल-कर दे देतीं।

जब वह चलने को होता तो कहतीं, देख खोका, सावधानी से चलाना, धक्का-वक्का मत लगा देना!

समर को जाने की जल्दी होती। झट से कहता, नहीं माँ, मैं तो बहुत सावधानी से चलाता हूँ, ज्यादा दूर जाता ही नहीं मैं।

ज्यादा दूर नहीं जाता कह देने से क्या ज्यादा दूर जाने का लोभ सवरण किया जा सकता था। बरानगर से सीधा श्याम बाजार चला जाता, वहाँ से कालेज स्ट्रीट और फिर भवानीपुर। भवानीपुर से बालीगंज। दलबल के साथ हवा की गति से मोटर भगाता, ट्रेन से होड़ करता। और रात को गैरेज का टीन का दरवाजा इतनी आहिस्ता खोलता कि आवाज न हो, पिता की नींद न टूट जाये।

उसके बाद फिर निस्तारिणी के पास जाना पड़ता। कभी तेल के लिये तो कभी खर्च के लिये। कभी बीस तो कभी पचास। वह सन्दूक खोलतीं और रुपये निकालकर दे देती।

तरह-तरह के परामर्श देते रहते सारे मित्र मिलकर। कोई गाड़ी से काश्मीर जाने की सलाह देता तो कोई कहीं और। कहाँ से रुपया आता था और कहाँ से आयेगा, इन सब बातों की चिंता करने की जरूरत

ही नहीं थी। हाथ फैलाते ही निस्तारिणी दे देती। इकलौता लड़का था —बड़ा आज्ञाकारी।

अलवान ओढ़े अधर विश्वास जब तालाब के घाट पर हवा खाने बैठे होते, तब जरा दुविधा होती। लेकिन दबे पाँव जाकर गाड़ी निकालता और सर्र से बगल से निकल जाता। एक यान्त्रिक आवाज होती और जरा सा धुआँ उड़ता—बस। एक बार आँखों की ओट हो गये तो कोई फिक्र नहीं।

आवाज सुनते ही अधर विश्वास गर्दन घुमाते।

कौन ?

कोई जवाब नही देता। कोई नही होता आस-पास।

फिर कहते—कौन ?

कौन जवाब देता ? तब तक तो गाड़ी कहाँ की कहाँ पहुँच गई होती। बगीचे के बाहर बड़ी सड़क पर तब तक थोड़ी धूल उड़ती दिखाई देती, उस ओर एकदृष्ट निहारते चुप बैठे रहते वह। मन ही मन क्या सोचते कोई नहीं जान पाता।

जान पाये समर की सुहागरात को।

बहुत रात हो गई थी। आमन्त्रित व्यक्ति सब चले गये थे। नौबत बजनी बन्द हो गई थी। केवल घर के पीछे जूठी पत्तलों के लिये भिखारियों व कुत्तों की छीनाझपटी हो रही थी।

समर बोला, मैं तुम्हें केवल कनक कहकर बुलाया करूँगा, क्यों ?

नई बहू के आँसू तब तक सूखने को आ गये थे। जवाब नहीं दिया उसने।

समर बोला, आज सुहागरात है, आज मुझसे बात करनी चाहिये, यह मालूम है ?

सिर उठाया नई बहू ने।

समर ने कहा—मेरे सारे मित्र बहुत प्रशंसा कर रहे थे तुम्हारी, कह रहे थे बड़ी सुन्दर हो।

फिर से गर्दन झुका ली नई बहू ने। समर को लगा जैसे उसके ओठों पर एक क्षीण सी मुस्कुराहट आ गई थी।

खुश होकर वह बोला, अब तक यार दोस्तों के साथ घूमता था अब तुम आ गई हो, तुम्हारे साथ घूमूंगा।

फिर जरा रुककर बोला, चलो, इस बार गर्मियों में काशी चलोगी ?

नई बहू ने फिर से मुँह उठाकर देखा था शायद।

समर ने पूछा था, माँ को छोड़कर जाने में दुख होगा, क्यों ?

सिर हिला दिया था उसने।

– तो फिर क्या कहना। मैं तो साथ रहूँगा ही, दोनों आराम से जायेंगे। मेरे साथ जाने में डर तो नहीं लगेगा ?

इस बार वास्तव में कनक के चेहरे पर मुस्कुराहट स्पष्ट हो गई थी।

समर ने कहा था, अरे वाह, मुस्कुराती हो तो कितनी सुन्दर लगती हो। फिर से मुस्कुराओ ना एक बार—बस एक बार।

कमरे के खिड़की दरवाजे सब अच्छी तरह बन्द थे, इसलिये बाहर की आवाज़ अन्दर आने की बात नहीं थी। पर तब भी समर को अचानक ऐसा लगा था जैसे बाहर कोई गड़बड़ थी। जैसे बहुत से लोग लकड़ी के जीने से जल्दी-जल्दी चढ़ उतर रहे थे।

और उसके बाद तुरत ही किसी ने दरवाजा थपथपाया था।

—कौन ? जरा गुस्से से उसने पूछा था।

गुस्से की बात ही थी। पर तब भी मिजाज ठीक रखकर उसने दुबारा पूछा था, कौन है ?

—मैं खोका बाबू, विधु, विधुवदन !

झट से उठकर दरवाजा खोलते ही विधु का रुआँसू चेहरा दिखाई दिया था। समर के सामने खड़ा देखकर भी वह कुछ कह नही पा रहा था।

समर ने पूछा था, बोल न, क्या हुआ ? मुँह फाड़े क्या देख रहा है खड़ा-खड़ा ?

—खोका बाबू, बाबू को जाने क्या हुआ है।

—पिताजी ?

समर जैसे आसमान से गिरा। अधर विश्वास ने ठीक वक्त पर ही खाया-पिया था। उनके लिये अलग व्यवस्था की गई थी। डाक्टरों के मना कर देने के कारण वह अधिक चले-फिरे भी नही थे। आने वालों में से कुछ लोग स्वयं जाकर उनसे मिल आये थे।

बहुतों ने कहा था, बहुत अच्छी बहू मिली विश्वास महाशय, विश्वास घराने के उपयुक्त है बहू ।

उन्होंने कहा था, तुम लोगों ने ठीक से खाया-पिया न ?

सबने कहा था, इन सब बातों की आपको चिंता करने की जरूरत नहीं है, आयोजन में जरा भी त्रुटि नहीं हुई । बहुत दिन बाद पेट भर-कर खाया । समधियाना भी अच्छा मिला आपको ।

वह बोले थे, बहू के बाप नही है ना, जो कुछ भी किया भाई ने किया, मैं तो बस लड़की का रूप देखकर लाया हूँ, न वंश देखा और न माँ-बाप ।

उन लोगों ने कहा था, आपकी बहू के रूप की तुलना नहीं की जा सकती विश्वास महाशय, रूप की प्रतिमा है वह ।

फिर एक-एक करके सब चले गये थे । सारा घर पुनः निस्तब्ध हो गया था । अधर विश्वास अपने कमरे में जाकर लेट गये थे । तब भी कोई तकलीफ नहीं थी । फिर कब नींद आ गई थी, पता भी नहीं चला था । निस्तारिणी भी आईं और आकर बगल में निढाल पड़ गई थीं ।

अचानक किसी के गले से निकलती गों-गों की आवाज से नींद टूटी तो हड़बड़ाकर उठ बैठी थीं निस्तारिणी । बगल के बाथरूम में बत्ती जल रही थी । उसी प्रकाश में देखा कि पति का चेहरा जाने कैसा हो गया था ।

जल्दी से बिस्तर से उठकर कमरे की बत्ती जलाई । पास जाकर देखा चेहरा नीला पड़ता जा रहा था । यन्त्रणा से मांसपेशियाँ सिकुड़ गई थीं ।

पुकारा, अजी, सुनते हो ।

कोई उत्तर नहीं मिला । क्या करें समझ में नहीं आया । बड़ा डर लगने लगा । ऐसा तो कभी नहीं हुआ था । दरवाजे से बाहर जाकर आवाज लगाई, बिन्दु···ओ बिन्दु ।

बिन्दु के आते ही बोलीं, जल्दी से विधु को बुलाकर कह डाक्टर बाबू को बुलाकर लायेगा ।

जरा देर पहले ही दावत खाने आये थे डाक्टर बाबू, फिर आये । देखा-भाला, परन्तु देखने लायक तब तक कुछ रह ही नहीं गया था । सब शेष हो चुका था ।

तब विधु ने जाकर खोका बाबू के दरवाजे का कुण्डा खटकाया था ।

और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी। निस्तारिणी पलंग के पास सर झुकाये बैठी थी। विधु-बिन्दु खड़े थे। विवाह के उपलक्ष्य में आये सगे-संबंधी सब चुप खड़े थे।

समर भी आकर पहले तो खड़ा हो गया था और फिर माँ के पास जाकर चीख मारकर रो पड़ा था।

मिसेज दास ने पूछा था, उसके बाद ?

उसके बाद की घटना भी विस्तारपूर्वक बताई थी समर ने। बिना बताये कोई चारा ही नहीं था। इतने साल बाद किसी से मन की सारी बातें कहकर बड़ा हल्का अनुभव कर रहा था। जब अकेले सड़कों पर भटकते-भटकते भी शांति नहीं मिलती थी मन को; ठीक उस समय मिसेज दास के साथ परिचय होना वरदान सा लगा था उसे।

याद था, उस रात फिर कनक से साक्षात् नहीं हुआ था। सारा घर शोकाच्छन्न हो गया था। मृत्यु ने एक पल में सारे आनन्द को ग्रस लिया था। सारा उत्सव जैसे किसी ने फूंक मारकर विषाद में परिणत कर दिया था। कहाँ रह गई नई बहू और किसकी सुहागरात—फूलों की सेज—सब पर जैसे जादू की छड़ी फेर दी थी किसी ने।

खबर पाकर सुबह ही कनक के भाई आ पहुँचे थे।

सब लोग श्मशान गये हुए थे। वहां से लौटने में भी काफी देर हो गई थी उस दिन। बरानगर के विशिष्ट व्यक्ति थे अधर विश्वास। खबर लगते ही सब फिर आ गये थे। पिछली रात जो बेटे के विवाह की दावत खाकर गये थे, वही सुबह सहानुभूति जताने आये थे। कुछ लोग श्मशान भी गये थे और कुछ बगीचे तक मुँह दिखाकर लौट गये थे। तब तक शामियाना बँधा था। बगीचे के कोने में जूठी पत्तलों पर चील-कौओं का उत्पात चल रहा था।

मधुसूदन सेन ने चुप खड़े रहकर सब देखा सुना। क्या हुआ था यह पूछा।

दुख की रात भी बीत जाती है। लेकिन निस्तारिणी ने उस दिन से दाँत से तिनका भी नहीं पकड़ा। हजार मिन्नतें करके भी उन्हें कुछ भी खिलाया-पिलाया न जा सका। बालीगंज से छोटी देवरानी आकर

जिठानी के सिरहाने वैठी रही, वहुत सांत्वना दी, समझाया-वुझाया पर व्यर्थ।



वहू के भाई ने पास आकर वात उठाई।

वोले, आपसे कहने का साहस तो नहीं हो रहा, घर पर ऐसी घोर विपदा का समय है, पर कहे विना रहा भी नहीं जा रहा। अगर कनक को दो-चार दिनों के लिये भेजने को अनुमति दे देतीं तो···

निस्तारिणी ने हाँ या ना कुछ भी नहीं कहा मुँह से।

मधुसूदन कहने लगे, मेरी वहन है, इसलिये नही कह रहा, पर हम लोग उसे जानते हैं ना, वह मुँह से कभी कुछ नहीं कहेगी—माँ वहुत दुखी हो रही हैं, उन्होंने कहलाया है कि अगर इस समय आप उसे उनके पास भेज देती।

समर का अशौच चल रहा था। सफेद थान के एक वस्त्र में शरीर लपेट कर घूमता, हाथ में आसन होता। अशौच अवस्था में पति-पत्नी का एक कमरे में सोना निषिद्ध था। उतने बड़े मकान में कहाँ वहू रहती और कहाँ वह, पता ही नहीं चलता। और फिर काम भी वहुत था। नाते-रिश्तेदार आते—कोई काम से तो कोई शोक प्रकट करने। अलग-अलग लोगों से अलग-अलग तरह की वातें करनी पड़ती। श्राद्ध का आयोजन भी उसे ही करना था, और कोई तो था नहीं। चाचा ताऊ भी नहीं थे—कोई पास आकर खड़ा होने वाला नहीं था। निमन्त्रण से लेकर तर्पण तक सव कुछ उसी का करणीय था। निस्तारिणी ने तो उसी दिन से जो खाट पकड़ी तो उठी ही नही थी, मुँह मे अन्न का दाना भी नही डाला था।

वेटा पास जाकर पुकारता, माँ!

वह सिर जरा सा उठाकर आँखें खोलती और फिर वन्द कर लेतीं।

वह फिर वुलाता, माँ!

और निस्तारिणी की आँखों से गंगा-जमुना वह निकलती। लड़के को देखकर अपने को रोक नही पाती वह। कितनी साध थी उन्हें, कितने अरमान थे। लड़के का विवाह किया, सोचा था वहू का मुँह देखकर वाकी जीवन शांति से विता देंगी। पति भी शायद ठीक हो जायेंगे—चल फिर सकेंगे। फिर से घर में रौनक हो जायेगी, नाती-नातनियों की किलकारियों से घर गूंज उठेगा।

पति कभी कुछ कहते ही नहीं थे, सदा से गम्भीर थे। विश्वास

घराने के सभी पुरुष गम्भीर व कम बोलने वाले थे। ससुर भी ऐसे ही थे। आखिरी दिनों में उनकी जुबान बन्द हो गई थी, मरते समय कुछ भी नहीं कह पाये थे। फिर तो धीरे-धीरे घर खाली हो गया था, खाने को दौड़ता था, सोकर, बैठकर, लेटकर, कैसे भी समय नहीं बीतता। पति उठकर खड़ाऊँ पहनकर खट-खट करते हुए नीचे उतरते तो फिर नीरवता छा जाती। बस कबूतरों की गुटरू गूं सुनाई देती रहती। और खोका सारे दिन जाने कहाँ रहता। सोचा था बहू आयेगी तो फिर सब जुड़ जायेंगे, सारी क्षतिपूर्त्ति हो जायेगी।

—माँ, ओ माँ!

उसको उस हाल में देखकर दिल की पीड़ा उभर उठती। आँसू छुपाने को तकिये में मुँह छुपा लेतीं वह।

एक दिन कनक के कमरे में जाने का मौका मिला समर को। नई बहू थी, शायद ठीक से सबको जान नही पाई थी। उसे देखते ही घूंघट निकाल लिया था। मैले कपड़े थे नई बहू के बदन पर। ससुराल आते ही अशौच का पालन करना पड़ा था। क्या कहे वह सोच ही नहीं पाया। कमरे में घुसते ही उसे देखकर भौंचक रह गया था वह।

जरा देर बाद बोला, भैया आये थे, मिल लीं?

कुछ नहीं बोली कनक।

उत्तर की प्रतीक्षा की समर ने। कनक को इस हालत में देखने की कल्पना नहीं की थी उसने। कमरे की आलमारी के शीशे में उसका स्वयं का चेहरा भी प्रतिबिम्बित हुआ तो विश्वास ही नही हुआ कि वह था। कैसा बदसूरत लग रहा था। इतने दिन अपनी ओर देखने का भी मौका नहीं मिला था। और कनक! सुहागरात का वह उतना सा सान्निध्य। सान्निध्य घनिष्ठ होने को आ ही रहा था। वह गहने, वह साड़ी, वह सुनहरी जरी के गोटे से बँधा जूड़ा—उसी की आशा की थी क्या उसने आज भी। उस दिन तो कनक उस घर मे नई बहू थी और आज जैसे वह पुरानी हो गई थी। पिछले दो-चार दिनों में ही पुरानी पड़ गई थी। क्यों हुआ ऐसा? किसकी वजह से हुआ? किसके अपराध से हुआ? समर के अपराध से? पर उसने तो कोई अपराध, कोई अन्याय नहीं किया था।

कुछ देर दोनों आमने-सामने चुप खड़े रहे।

फिर समर बोला, भैया कह रहे थे, यहाँ तुम्हें परेशानी हो रही है?

इसके वाद क्या कहे, समझ ही नहीं पाया वह। सब जैसे गड़बड़ा गया था। पसीना छूट गया था।

फिर कुछ सोचकर पूछा, तुम जाओगी वहाँ ? भैया के पास ?

अब तक कनक ने एक शब्द मुँह से नहीं निकाला था।

इस बार मुँह उठाकर कहा, हाँ।

समर ने जैसे ठीक नही सुना। बोला, तुम सचमुच जाना चाहती हो ?

इसके उत्तर में कनक ने कुछ नहीं कहा।

समर वोला, यह भी ठीक है, पिता तो मेरे मरे है, उसके लिये तुम क्यों व्यर्थ में कष्ट उठाओगी ? पर एक बात पूछूँ तुमसे कनक ?

सिर ऊँचा उठाया कनक ने।

समर बोला, माँ की मंजूरी तो लेनी चाहिये। उस दिन से माँ ने कुछ भी नहीं खाया-पिया—मेरी बात तो चलो छोड़ दो—पर ······

समर ने सोचा था, इस पर शायद वह कुछ कहेगी, पर कुछ भी नहीं कहा कनक ने।

समर ने फिर कहा, मुझे वड़ा कष्ट होगा, सच कनक। तुम सोच भी नहीं सकती, मुझे कितना कष्ट होगा—हालाँकि तुम्हारे साथ रहा ही कितना।

फिर और निकट खिसक आया था वह और एकदम धीरे से पूछा था, अच्छा सच-सच बताओ, तुम्हें भी कष्ट होगा न, क्यों ?

कनक ने फिर से सर झुका लिया।

समर ने कहा, पता है कनक, मेरी वात का तुम विश्वास तो नही करोगी, पर पिछले सात रातों से मैं सोया नहीं, दिन को भी आराम नही मिला, श्राद्ध की सूची बनानी पड़ती है रोज। परन्तु रात को जैसे ही लेटता हूँ, आँखें नींद से वन्द होने लगती हैं कि तुम्हारी सूरत सामने आ जाती है और नीद उड़ जाती है। सारी रात जागकर काट देता हूँ।

वात कहकर जवर्दस्ती हँसने का प्रयत्न किया समर ने।

फिर बोला, और तुम ? तुम तो आराम से खर्राटे भरती होगी, क्यों ?

कुछ बोली नही कनक, लेकिन समर को लगा जैसे कनक ने सिर हिलाया।

फिर वोला, तुम भी नहीं सोती, क्यों है न कनक ? तुम्हें भी नींद नहीं आती ना ?

कोई जवाब नहीं दिया कनक ने । .

समर ने आगे कहा, जानती हो कनक, शादी से पहले वड़ी फिक्र में पड़ गया था मैं । सोचता था, जाने कैसी लड़की होगी । लेकिन शुभ-दृष्टि के समय जब पहली बार तुम्हें देखा तो मन खुश हो गया ।

फिर कुछ क्षण चुप रहकर बोला, अच्छा, शुभदृष्टि के समय तो तुमने भी मुझे देखा था ना ? तो मुझे देखकर तुम्हें कैसा लगा था कनक ? बताओ ना ?

कहते-कहते और पास खिसक आया था समर ।

उसके पास आते ही कनक पीछे हट गई ।

समर ने फिर पूछा; बताओ ना, सच, बड़ी इच्छा होती है जानने की—बताओ ना कनक ।

इतनी देर बाद कनक की जुबान खुली थी ।

बोली, छुओ मत मुझे—जानते नही, ऐसे में नही छूते ।

एकदम से पीछे हट गया समर । सँभाल लिया स्वय को ।

बोला, जानता हूँ कि नहीं छूते, लेकिन जाने कब यह अशौच खत्म होगा और कब तुम्हें छू पाऊँगा ।

फिर कुछ पल चुप रहकर बोला, पर तुम क्या सच में जाओगी ? सचमुच जाना चाहती हो तुम ? शायद यहाँ तुम्हें तकलीफ हो रही है । माँ के पास जाकर थोड़ा आराम मिलेगा । भैया भी यही कह रहे थे—लेकिन पहले एक वादा करो—

सिर उठाकर कनक ने समर की ओर देखा ।

वह बोला, वादा करो, रोज एक चिट्ठी लिखोगी मुझे !

फिर दो पल रुककर बोला, तुम्हारी चिट्ठी पाकर ही सकता है रात को नीद आ जाये, नहीं तो किसी भी काम में मेरा मन नही लगेगा कनक । भले ही इन दिनों तुमसे मिलना नही होता पर यह तो तसल्ली थी कि तुम घर में हो, एक छत के नीचे—पर तब ! तब तुम्हारी चिट्ठी भी नहीं मिली तो दम घुटने लगेगा कनक । बहुत दुख होगा मुझे—बोलो, चिट्ठी डालोगी ? बोलो ना ?

मुस्कुरा दी कनक ।

बोली, डालूंगी ।

—डालोगी ना ? देखो,

घर दौड़ आऊँगा—फिर यह [illegible]
किया। दोष मत देना मुझे।

उसी दिन मधुसूदन सेन को खबर भिजवा दी गई। गाड़ी लेकर आ गये वह।

कनक ने सास के कमरे में जाकर पैर छूने के लिये जैसे ही हाथ बढ़ाये, निस्तारिणी ने पाँव खींच लिये।

बोलीं, रहने दो बहू, ऐसे में पैर नहीं छूते।

समर से मिलकर जाना भी जरूरी था। उसके कमरे में पहुँचते ही वह दोनों हाथ बढ़ाकर बाँहों में भरने को जैसे ही आगे बढ़ा कि तिरछी नजर डालकर कनक बोली, छि: !

हड़बड़ा सा गया समर। कनक के सामने खुद को बड़ा बौना सा महसूस किया। इतना छोटा था वह ! इतना भी संयम नहीं था उसमें ! इतना सा आत्म संवरण नहीं कर सकता वह !

कनक ने कहा, अच्छा, चलूँ—?

कनक की मुस्कुराहट देखकर सब कुछ भूल गया समर। मन का सारा विषाद धुल गया।

बोला, तुमने वादा किया है, याद है ना ?

कनक बोली, इस समय ऐसी बातें नहीं करते, जानते नहीं ?

—जानता हूँ, लेकिन तुम्हें दूर भेजने में डर लगता है मुझे।

कनक दरवाजे की ओर चली ही थी कि समर ने बुलाया—

—सुनो, एक बार और सुन जाओ कनक।

पास आ गई कनक। बोली, क्या है ?

—तुम मुझे भूल तो नहीं जाओगी।

मुस्कुरा दी कनक। एक अभिनव मुस्कान। जैसे समर को पागल समझ रही हो।

समर ने कहा, मैं सचमुच पागल हो गया हूँ कनक—ऐसा लग रहा है, जैसे तुम मुझसे बहुत दूर चली जा रही हो।

कनक बोली, मैं तो लौट आऊँगी यहीं।

पर समर को जैसे विश्वास नहीं हुआ।

बोला, आ जाओगी ना ?

—तुम इतना मत सोचो, मैं दो-चार दिन में ही आ जाऊँगी।

फिर जाते-जाते पीछे घूमकर बोली, प्रणाम नहीं करते ऐसे में इसलिये नहीं किया—बुरा मत मानना।

देखा, समर जहाँ का तहाँ अचल खड़ा था। मुँह गंभीर था। उसकी ओर देखकर मुस्कुराते हुए कहा, अच्छा चलूँ अब ?

कहकर पलटी और चली गई। नीचे भैया गाड़ी लिये खड़े थे। गले तक घूँघट निकालकर जल्दी से गाड़ी में जाकर बैठ गई। सामान पहले ही विधु ने गाड़ी में रख दिया था। गाड़ी स्टार्ट हुई और सर्र से तालाब के बगल से पीछे धूल का गुब्बार छोड़ती हुई चली गई।

मिसेस दास ने पूछा, फिर उसके बाद ?

मिसेज दास के पास पहुँचकर समर जैसे जी उठा था। ऐसे कौन उसकी व्यथा समझ सकता था, कौन सहानुभूति दिखा सकता था ! हालाँकि मिसेज दास से उसका सम्पर्क ही क्या था ! कुछ भी तो नहीं। बरानगर के विश्वास घराने का लड़का कहकर सम्मान जताने वाला कौन रह गया था ? और विश्वास घराने का नाम ही कौन जानता था अब ! पुराने दो-चार बुड्ढे-ढुड्ढे रह गये थे बस उस जमाने के, जिन्हें मालूम था। और पुराने जमाने की बात भी कैसे कह दें। अधर विश्वास जब तक जीवित थे, तब तक उसे मोटर चलाते देखकर लोग मरा हाथी सवा लाख का कहते थे। पर अब सब भूल-भाल गये थे। उसके बाद वह मकान भी नहीं रहा और ना ही कभी वह बरानगर की तरफ गया। सुना था कि मकान के हिस्से हो गये थे, किरायेदारों ने कब्जा कर लिया था। करते रहें, उसकी बला से। खड़ा रहे या टूट-फूट कर धूल में मिल जाये, उसे क्या करना। नीचे गिरते-गिरते जिस दिन माधव सिकदार लेन के मेस में पहुँचा था, तब भी अपना परिचय नहीं दिया था उसने। यह नहीं बताया था कि वह विश्वास घराने के अधर विश्वास का लड़का था। कलकत्ते में रहने वाले सारे रिश्तेदारों से उसने संबंध विच्छिन्न कर लिये थे। किसी के सामने जाकर खड़ा नहीं हुआ था वह, किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया था उसने।

माँ का एक गहना बचा था, अंत में उसे भी बेचकर बदन के कपड़ों में निकल आया था वह।

मेस में बनमाली बाबू ने बस इतना पूछा था, आपका नाम क्या है ?

उसने कहा था, समरचन्द्र विश्वास।

पिछले पचास सालों से बनमाली बाबू उस मेस में थे। मैनेजरी की नौकरी जीवन भर के लिये पक्की हो गई थी उनकी।

जैसे स्वयं से कहा था उन्होंने हम लोग जाने-पहचाने लोगों के अलावा किसी को इस मेस में नहीं रखते, जैसा जमाना आ गया है, उस में हरेक का विश्वास तो किया नही जा सकता। पर आप कह रहे है कि आपका कोई ठिकाना नहीं है—तो कुछ दिन रह लीजिये। लेकिन जगह ढूंढ लीजियेगा जल्दी। पहले ही कहे दे रहा हूँ।

परन्तु न तो कोई जगह ली गई और ना ही मेस बदला गया। परिचय बता देने पर सुविधा ही होती उसे। लोगों की सहानुभूति भी शायद मिल जाती। 'बेचारा' शब्द भी नाम के साथ जुड़ जाता।

किन्तु वश परिचय देने में भी उसे जैसे हीनता का बोध होता था। यद्यपि न जाने कितनी बार वरानगर मकान को देखने के लिये मन छटपटाता था। आखिर तो वहाँ जन्मा था, पला था, बड़ा हुआ था—इतनी उम्र गुजारी थी वहाँ।

तब तक सरकारी नौकरी नही मिली थी उसे। तब तक सड़कों पर मारा-मारा फिरता था वह।

भूधर बाबू ने तो उसे पहले बुलाकर पास बैठाया था।

कहा था, बैठो बैठो, तुम्हीं विश्वास घराने के लड़के हो ? क्यों, हुआ क्या था ?

समर ने कहा था, पिताजी पर कर्ज बहुत था, हमें किसी को पता नहीं था ?

—अभी उस दिन तो अधर विश्वास ने लड़के के विवाह में मुहल्ले भर के लोग बुलाये थे—कितने भाई-बहन हो तुम लोग ?

—मैं अकेला हूँ।

—ओ···तो तुम्हो अकेले लड़के हो विश्वास महाशय के। अंत में तुम्हारी तकदीर में नौकरी करनी लिखी थी ?

नाम-धाम सब छुपा जाने की इच्छा थी समर की। लेकिन भूधर-बाबू दरख्वास्त देखकर सब जान गये थे। उसका मन वहाँ से भाग जाने को हुआ था, लेकिन कोई उपाय नही था।

भूधर बाबू कैशियर थे। तकदीर से उनके रिटायर होने में चार पाँच महीने बाकी थे।

बोले थे, और थोड़े दिन बाद आते तो मैं मिलता ही नही, फिर कौन नौकरी देता—हाँ तो बाल-बच्चों के साथ बड़ी मुसीबत उठानी पड़ रही होगी तुम्हें।

—बाल-बच्चा नहीं हुआ।

—चलो, बहुत बचे, जो बाल-बच्चा नही हुआ अब तक—पर तब भी दो आदमियों का खर्च तो है इस जमाने में! खाने पहनने में क्या कम खर्च होता है? फिर मकान का किराया। मकान ले लिया ना?

—जो नहीं, मेस में हूँ अभी।

—और पत्नी को शायद बाप के यहाँ भेज दिया है? ठीक ही किया, नौकरी मिल जाने पर ही मकान लेना उचित है। हाँ तो विश्वास महाशय क्या कुछ भी नही छोड़ गये?

समर ने कहा था, हाँ, हाँ, छोड़ गये थे।

—कितना रुपया छोड़ गये थे? उत्सुकता से भूधर बाबू ने पूछा था।

—तेरह लाख का कर्ज छोड़ गये थे।

चौंक पड़े थे भूधर बाबू। सर्वनाश! वह सारा कर्जा लड़के को चुकाना पड़ा था?

ये सारी बातें किसी बाहर के आदमी को बताने को जी नही चाहता समर का। तेरह लाख का देना! फिर अत तक क्यों इतने नौकर-चाकर, मुंशी, गुमाश्ते, इतना खाना-पीना आडम्बर अनुष्ठान होता था कौन जाने! इतने कर्जे के बाद भी क्यों गाड़ी खरीदी गई थी! क्यों कभी किसी को नही बताया! क्यों नहीं बताया उसे। नहीं तो वह इस तरह रुपया क्यों उड़ाता। भूषण की दुकान से दो रुपये रोज के तो बीड़े आते थे। भूतो थैले भर-भर मछली और साग-भाजो लाता था, जबकि खाने वाले कितने थे। उसे भी तो दहेज में बहुत सा रुपया मिल सकता था। कितने चक्कर लगाते थे लोग। पर क्यों वह दहेज लेने के विरुद्ध थे, कौन जाने! लड़का नहीं बेचेंगे! कहते थे, विश्वास घराना लड़का बेचने का कारबार नहीं करता—बस लड़की सुन्दरी रूपसी होनी चाहिये—अपूर्व रूपसी! बस यही एक मात्र शर्त्त थी उनकी।

और कनक उनकी शर्त पर पूरी उतरी थी। मात्र कुछ घंटों का परिचय था उसके साथ, लेकिन क्या पागलपन था समर का।

जाते समय कनक वापस आने का वादा कर गई थी। अपनी बात रक्खी थी उसने। पंडित ने कहा था, श्राद्ध के अनुष्ठान में बहू को भी आना पड़ेगा। इसलिये श्राद्ध के दिन भैया ही ले आये थे उसे। तब तक पूरा घर पुनः उत्सव मुखर हो उठा। फिर से शामियाना लगा था। फिर से फर्द बनाकर लोगों को निमन्त्रित किया गया था। बालीगंज से चाचा-चाचियाँ-भाई-भतीजे सब आये थे। पूरी मिठाई की सुगंध से वातावरण महक रहा था।

पंगत में मधुसूदन सेन के पास ही निताई हालदार बैठे थे। बोले, पहचाना?

—क्यों नहीं पहचानूंगा। देख लीजिये कैसा घर दिलवाया था, धूमधाम देख रहे है?

केशव बॉड़ुज्जे बोले, देख लीजिये कैसे घर आई है आपकी बहन—कितनी तरह के आइटम बने है—मिठाई खाइये—बरानगर की मिठाई खा ली तो जीवन भर भूल नहीं पायेंगे महाशय।

खूब हँसी-मजाक हुआ था। अंत में जब सब लोग विदा हो गये थे, तब भी मधुसूदन सेन बैठे रहे थे।

समर के पास आते ही उन्होने कहा था, तुम्हें ही ढूँढ़ रहा था समर, एक जरूरी बात करनी थी तुमसे।

—क्या बात है भैया, कहिये।

एक मिनट को तो दुविधा में पड़ गये मधुसूदन बाबू। पर फिर कह ही डाला।

बोले, तुम्हारी माँ कैसी है आज?

—बस वैसी ही हैं, अभी भी बिस्तर नहीं छोड़ा उन्होंने।

—मैं भी एक बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ।

—कैसी मुश्किल? परेशान हो उठा था समर।

मधुसूदन बाबू ने कहा था, माँ की तबियत भी अच्छी नहीं है। तुम्हारी माँ जैसी ही हालत है, कल एकादशी थी, एक बूंद पानी नहीं पिया। उसी हालत में नल पर गईं तो औंधे मुँह गिर पड़ी।

चौक उठा समर।

बोला, सर्वनाश, फिर?

—तकदीर में जो लिखा है, उसे कौन मिटा सकता है। बस सुबह ही आफिस की छुट्टी करके डाक्टर लाया, दवा लाया, खिलाई। फिर

उन्हे उसी हालत में छोड़कर कनक को ले आया, यहाँ भी तो आना जरूरी था।

—बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी आप लोगों को, समर ने सहानुभूति जताई।

—मुसीबत खत्म कहाँ हुई अभी। माँ तो बिस्तर में ही है। पाँव की हड्डी टूट गई है, खिलाना-पिलाना सब कुछ बिस्तर में ही करना पड़ेगा, फिर मेरा आफिस—रोज-रोज तो घर नहीं बैठ सकता।

समर ने कहा, हाँ, तब तो सचमुच आपको बड़ी असुविधा हो रही होगी।

—एक बात थी समर—

कहकर गर्दन झुकाकर धीमे स्वर में मधुसूदन बाबू ने आगे पूरा किया, माँ ने तुमसे एक बात कहने को कहा था।

—क्या बात ?

—कुछ दिनों के लिये कनक को ले जाता।

फिर से चौका समर। पर ऊपर से शात बना रहा।

मधुसूदन बाबू बोले, तुम्हारे यहाँ भी वही हालत है। मैं जानता हूँ उसे ले जाना उचित नहीं है, पर बुड्ढी औरत है, कैसे भी नहीं मानती। बोली, तू कह आ समर से, समर कोई नासमझ तो नहीं है।

कुछ देर जाने क्या सोचा समर ने। लेकिन तय नहीं कर पाया क्या जवाब दे। विवाह के बाद ठीक से देखा तक नही। एक रात भी एक साथ एक कमरे में नहीं गुजारी। पिछले कुछ दिन हजारों कामों के बीच भी कनक को भूल नही पाया था वह। श्राद्ध के दिन सुबह से ही किसी भी गाड़ी के दरवाजे पर आकर खड़े होते ही उसके कान खड़े हो जाते। यह शायद चोर बागान से आई। पर नहीं। लोग आते जा रहे थे और सहानुभूति दिखाते जा रहे थे। लेकिन उसका मन तो कही और पड़ा हुआ था। जैसे ही चोर बागान की गाड़ी आई थी, वह उठ खड़ा हुआ था।

जाने कहाँ से विधु दौड़ा-दौड़ा आया था और बोला था—

दादा बाबू, चोर बागान से बहू जी आ गई।

खिड़की से ही देखा था समर ने। गाड़ी आकर पोर्च में खड़ी हो गई थी। कनक घूंघट निकालकर गाड़ी से उतरी थी। पीछे मधुसूदन बाबू थे।

विधु रास्ता दिखाकर कनक को अन्दर ले गया था।

मधुसूदन बाबू सीधे जहाँ कीर्तन हो रहा था, चले गये थे। बोले थे, सब ठीक ठाक चल रहा है न ? बीच में एकबार आने को सोच रहा था, पर हमारे यहाँ भी एक दिन जरा झंझट हो गया था।

इस तरह आवभगत हुई थी। उस समय समर ने यह नहीं सोचा था कि कनक उसी रात चली जायेगी। वह तो यही समझे बैठा था कि रात को कनक से मिलना होगा—बहुत दिन बाद मिलना होगा। मिलने पर किस बात से शुरू करेगा, काम के बीच-बीच दिन भर यही सोचता रहा था। दो-चार बार अन्दर भी गया था। कनक माँ के कमरे में बैठी थी। वहाँ और भी बहुत-सी औरतें थी, कमरा भरा हुआ था। तब भी कनक को पहचानने में दिक्कत नहीं हुई थी उसे।

निस्तारिणी लेटी हुई थीं। लड़के की ओर देखकर भी नहीं देखा।

समर ने पुकारा, माँ !

निस्तारिणी ने नजरें उठाईं।

उसने कहा, चोरबागान के मधुसूदन बाबू कह रहे थे कि आज तुम्हारी बहू को ले जायेंगे, उसकी माँ के पाँव की हड्डी टूट गई है, नल पर गिर पड़ी थी।

निस्तारिणी ने नजरें घुमाकर कनक की ओर देखा। उसने गर्दन नीची कर ली।

वह बोलीं, तो मुझसे क्यों पूछ रहा है बेटा ?

—अरे वाह, तुमसे नही पूछूँगा तो किससे पूछूँगा माँ ? तुम्हारे हाँ कहे बिना जा सकती है क्या वह ?

तेरी क्या इच्छा है खोका ?

—मेरी इच्छा क्या होती माँ, तुम्हारी बहू है, जो तुम कहोगी, वही होगा—तुम्हारे अलावा कौन है मेरा माँ ?

यह सुनते ही निस्तारिणी की आँखों से आँसू गिरने लगे। सचमुच और कौन है उसका ? कौन है उसे देखने वाला ? अब तक वह थे तो अच्छा बुरा सब देखते थे। जो ठीक समझते थे, करते थे। न किसी से सलाह माँगते थे और न किसी की सलाह मानते थे। वह स्वर्ग चले गये, अब वह है। खोका ही उनकी एकमात्र सांत्वना है, एकमात्र भरोसा है। ऐसे बिस्तर से लगकर कैसे काम चलेगा ?

बोलीं, नहीं रे खोका, अब उठ जाऊँगी बेटा, ठीक हो जाऊँगी।

समर बोला, माँ, अब तुम जरा जल्दी ठीक हो जाओ—मुझे भरोसा नहीं मिल रहा—मैं अकेला हूँ, कोई नहीं है मेरा माँ।

लड़के की बात सुनकर निस्तारिणी का दिल बैठने लगता था।

बस कहतीं—खोका—

समर पास जाकर कहता, क्या माँ ?

वह कहती, जब तक वह थे, बेफिकर रही, कुछ नहीं देखा समझा। अब कहाँ क्या है, यह सब तुझे ही तो देखना पड़ेगा बेटा।

पर समर को ही कहाँ पता था कुछ ! कहाँ से रुपया आता था, कैसे खर्च होता था, क्या लेना था, क्या देना था—कुछ भी तो नहीं जानता था। अब अचानक कैसे कर पायेगा ? वह तो केवल मोटर लेकर घूमा था और जरूरत पड़ने पर माँ के सामने हाथ फैलाया था। निस्तारिणी भी कभी रुपये देतीं और कभी कोई गहना निकालकर दे देतीं।

जब गहना देतो तो समर अवाक रह जाता। माँगे रुपये और दे रही थीं गहना।

कहता, गहने का क्या करूँगा माँ !

वह कहतीं, रुपये अभी हाथ में नहीं हैं, इसे बेच देना, रुपये मिल जायेंगे।

समर तब भी हिचकिचाता।

कहता, पर इसे बेचने की क्या जरूरत है माँ—तुम सन्दूक खोलकर रुपये निकाल दो ना।

निस्तारिणी कहतीं, अभी है नहो मेरे पास, उनसे लेकर रक्खूँगी, अभी तू इससे काम चला ले।

इस तरह उसने कितने रुपये और कितने गहने माँ से लिये थे, उसका कोई लेखा-जोखा नहीं था। श्याम बाजार के मोड़ पर एक सुनार की दुकान थी, जब तब उसके यहाँ जाकर गहना बेचता और रुपये ले लेता। कितने गहने थे माँ के पास, खत्म ही नहीं होते थे। लेकिन माँ के मरने पर सन्दूक खोला था तो स्तंभित रह गया था समर। दो-चार कान के बुन्दे और अँगूठियाँ तथा दस-बारह रुपये पड़े थे बस। और कुछ भी नही था।

माँ की मृत्यु भी बड़े अस्वाभाविक ढंग से हुई थी।

उस दिन भी लौटने में रात हो गई थी। ऐसे रात होना अस्वाभाविक भी नहो था। घर लौटने को जी ही नहीं चाहता था समर का।

क्या आकर्षण था घर में। रोज की तरह गाड़ी लेकर निकला था। सिनेमा देख कर निकला तो चोरबागान जाने की इच्छा उभरी मन में, लेकिन दबा लिया इच्छा को। क्यों जाये वह ! कनक ने तो आने को लिखा नहीं ! एक चिट्ठी तो डाल सकती थी वह !

उस दिन समर ने उससे पूछा था।

मिलना ही कितनी देर के लिये हुआ था।

अपने कमरे में सिकुड़ी-सिमटी खड़ी थी वह। माँ के कमरे से उठकर अपने कमरे में आ गई थी वह। माँ बेटे में बात हो रही थी और वह भी उसे लेकर। अतः वहाँ रहना उचित न समझकर उठ आई थी। उसे पता था कि समर उससे मिलने जरूर आयेगा।

समर ने पूछा था, तुम शायद पहले से वापस जाना तय करके आई थी ?

अचानक यह प्रश्न सुनकर कनक घबड़ा गई थी।

बोली थी, माँ गिर पड़ी थीं ना, इसलिये।

समर ने कहा था, यह मुझे भैया से पता चल गया है।

कनक ने सफाई दी थी, माँ की उमर हो गई है, जरा से में घबरा जाती है, यहाँ काम था, इसलिये आना पड़ा।

—तो तुम काम था, इसलिये आई थी ? नहीं तो नहीं आती ?

—गुस्सा हो गये ?

— गुस्सा नहीं होऊँगा ? वादा खिलाफी पर गुस्सा नहीं आयेगा ?

—मैने क्या वादा खिलाफी की है ?

—वादा नही किया था कि रोज एक चिट्ठी डालोगी ?

सर झुका लिया था कनक ने। जरा चुप रहकर बोली थी, मुझे बड़ी शर्म आती थी, सच, कई बार सोचा लिखने को।

—मुझे चिट्ठी लिखने में भी तुम्हें शर्म आती है ?

—यह तुम्हारी समझ में नहीं आयेगा।

—और मैं था कि रोज सुबह-शाम डाकिये का रास्ता देखता था —उससे पूछता भी था रोज।

इस पर कनक ने शिकायत की थी, तुम भी तो एकबार आ सकते थे !

*समर ने कहा था, मैं क्यों आता, तुम लोगों ने बुलाया था मुझे ?*
और फिर····

तो बिना बुलाये आना नहीं चाहिये था ?—कभी तो आदमी की इच्छा देख आने की होती है कि दूसरा कैसा है।

समर ने कहा था, जाने दो। आज जा रही हो तुम, नही तो इसका जवाब देता तुम्हें।

उसने पूछा था, भैया नीचे खड़े हैं मैं जाऊँ।

—मुझे मालूम था, तुम चली जाओगी।

कैसे जाना ? शरारत से कनक ने पूछा था।

—जब तुम गाड़ी से उतरी थीं तो तुम्हारा सूटकेस वगैरह नहीं उतरा था—तभी समझ गया था कि तुम रहने नही आई थी !

—देखो, फिर गुस्सा कर रहे हो तुम। यहाँ नहीं रहूँगी तो कहाँ जाऊँगी ? सारी जिन्दगी यहीं तो रहना है—बाप के घर तो लड़कियाँ बस शुरू-शुरू में जाती हैं।

एक दम से पिघल गया समर। बिल्कुल पास जाकर बाहों में ही भर लेता उसे कि तभी बाहर से विधु ने पुकारा था, दादा बाबू !

—क्या है विधु ! तुरत सँभाल लिया था समर ने खुद को।

—क्या कह रहा है।

—बहूजी के भाई जल्दी मचा रहे है। यह कह रहे हैं रात हो गई है।

बस इतना ही ! वही अतिम बार था। इसके बाद कनक से मिलना नहीं हुआ था और शायद जीवन में कभी होगा भी नहीं। उसके बाद तो दुर्योग घिर आया था। माँ मर गई और चारों ओर से एक साथ जैसे सर पर गाज आ पड़ी थी। इतने कर्जे की बात सुनकर चक्कर में पड़ गया था वह। अब तक कुछ मालूम ही नहीं था, कल्पना भी नहीं थी। एक-एक करके चिट्ठी आने लगी थीं उसके नाम। मुकदमे चले। जीना दुश्वार हो गया था।

भुवनेश्वर बाबू पारिवारिक वकील थे, उन्ही की शरण मे जाना पड़ा। पिता के जीवित रहते उन्हें कई बार घर पर आते देखा गया था।

उन्होने कहा था, करीब सौ मामलों का धक्का है।

कागज-पत्र सारे दिये उन्हें। तीन दिन-तीन रात बराबर देखते रहने पर भी कोई रास्ता नहीं ढूँढ़ पाये थे वह। कहा था, आखिरी दिनों में वह मुझे भी कुछ नही बताते थे।

समर ने कहा था, मुझसे तो कुछ कहते ही नहीं थे पिताजी, पर माँ को भी कुछ नहीं मालूम।

भुवनेश्वर बाबू ने कहा था, चाय के बगीचे के दो लाख के शेयर खरीदने के लिये मकान गिरवी रक्खा था, यह मुझे नहीं बताया था—वह सारा रुपया पानी में गया। फिर सूद के पचास हजार—यह सब उतरेगा कैसे?

समर ने कहा था—बस पास में तो माँ के कुछ जेवर और गाड़ी है।

—कितने के जेवर होंगे? कितना तोला सोना होगा? सोने का भाव अच्छा है आजकल।

फिर से कागज-पत्न, दलील दस्तावेज लेकर बैठे। दिन-रात वकील और कचहरी। गाड़ी तभी बेच दी थी समर ने। फिर वही पहले की तरह पैदल चलने लगा था।

निस्तारिणी तब जिन्दा थीं। कहतीं, खोका!

माँ को कुछ भी बताने में कष्ट होता था। क्या फायदा था बताने में? कोई रास्ता तो निकाल नहीं पायेंगी वह। वह ऐसे दिखाता जैसे कुछ भी न हुआ हो, सब पहले की तरह चल रहा हो।

निस्तारिणी अपने कमरे में लेटी रहतीं और जाने कैसी एक बेचैनी का अनुभव करतीं। कहतीं, विधु कहाँ है रे खोका, देश गया है क्या?

विधवा औरत थीं। एक वक्त खाती थीं। वह भी न खाने के बराबर था।

फिर पूछतीं वह, बहू कब आयेगी बेटा?

वह कहता, आयेगी माँ, तुम्हारे बुलाते ही आ जायेगी।

—तेरी सास कैसी है, खबर मिली?

—अभी उनका पाँव ठीक नहीं हुआ माँ।

—एक बार बहू को ले आ बेटा—बहुत दिनों से देखा नहीं उसे, बड़ा सूना-सूना लगता है—विधु, बिन्दु, भूतो सब के सब कहाँ चले गये?

सचमुच सारा घर सूना हो गया था। बरानगर के सारे लोगों को पता चल गया था। भूषण की दुकान पर अड्डा जमता।

आफिस जाते हुए निताई हालदार पान खरीदने रुकते। पान मुँह में भरकर, चूने की डब्बी हाथ में लेकर बस में चढ़ते थे।

आते ही कहते, पान दे भूषण।

पान बनाते-बनाते भूपण कहता, सुना निताई बाबू ?

—क्या ?

—विश्वासों का मकान बिक रहा है। मेरी दुकान से पान जाने बन्द हो गये हैं।

उछल पड़ते निताई हालदार—क्या कह रहा है, इश् ! मकान बिक रहा है ? तो फिर ?

तो फिर क्या था किसी के दिमाग में नहीं आता। सभी सिर खपाते। पुरानी बातें याद आतीं सबको। क्या बोलवाला था विश्वास घराने का। कितना नाम था। अभो जैसे कल की बात हो! बरानगर के पुराने रहने वाले जानते थे।

उन दिनों यही मकान पूरे मुहल्ले का केन्द्र था। बारहों महीने कोई न कोई उत्सव अनुष्ठान चलता ही रहता था। वह मकान बिकेगा —यह तो सोचा भी नही जाता।

लेकिन जो होना था, वही हुआ।

जिस दिन चेन कम्पास लेकर इजीनियर, कान्ट्रैक्टर, मजदूर आये थे – घर के सामने लोगों की भीड़ लग गई थी। अब कोई संदेह नही रह गया था। निर्वाक साक्षी बने लोग खड़े रहे और नाप जोख होती रही।

भुवनेश्वर बाबू दलील पत्र हाथ में लिये जाने क्या कर रहे थे, समर भी वहीं खड़ा था। खरीददार के आदमी भी थे साथ। सभी के चेहरे गंभीर थे। नाप-जोख होती रही—मानों कोई भीषण विपर्यय घटने वाला हो। उस दिन बरानगर के लोगों के मुँह में जैसे अन्न नहीं रुचा। उठते-बैठते खाते-पीते बस वही एक बात। भूषण जो मात्र पनवाड़ी था, वह भी दिन भर खिन्न बना रहा। पुराना ग्राहक आता तो कहता, सुना ?

ग्राहक कहता, हाँ सुना—यही तो नियम है, एक उठेगा और एक गिरेगा।

सभी जैसे दार्शनिक हो गये थे। एक अन्यमनस्कता सी छा गई थी सबके दिल पर। सब इतने चिन्तित हो उठे थे जैसे उन्हीं की परम क्षति होने जा रही हो।

दोपहर के बारह बजे तक नाप-जोख चली। फिर कब तक खड़ा

रहा जा सकता था। लेकिन तब भी जैसे किसी को चैन नहीं था। सभी गौर से देख रहे थे, खोद-खोद कर एक दूसरे पूछ रहे थे। घर, बगीचा तालाब सब नापा गया। फिर कागज पत्र देखे गये। फिर कोर्ट में रजिस्ट्री होने के बाद हाथ में रुपये आयेंगे तो कर्जा उतारा जायेगा। बाप का तेरह लाख का कर्जा चुका देगा तब समर ऋण मुक्त होगा।

परन्तु उसके बाद ?

समर के मन में भी बस यही एक प्रश्न था—उसके बाद ?

अर्थात् निस्तारिणी कहाँ जायेंगी ? अधर विश्वास की विधवा पत्नी, शय्याशायी थी वह। उनका क्या होगा ! इतना दुख भी तकदीर में होता है ! उन्हें तो सब कुछ आँखों से देखना पड़ा। सब कुछ जान गई थीं वह ! उनकी क्या गति होगी ? उनको भी तो अंत में श्वसुर का ठिया छोड़ना पड़ेगा।

भूषण बोला था, उनकी तकदीर में ही इस उमर में दुख भोगना लिखा था, और क्या ! सारा जीवन तो कोई दुख देखा नहीं।

—लेकिन मकान बिक जाने पर वह लोग रहेंगे कहाँ ?

लड़के की तो ससुराल है; पर माँ ? वह इस बुढ़ापे में कहाँ जायेगी ? वह तो लड़के की ससुराल मे रहने को नहीं जा सकतीं ?

वह शायद अन्तिम दिन था, जब मधुसूदन बाबू इस घर मे आये थे। आकर पूछा था, तुम मकान बेच रहे हो समर ?

समर जरा अन्यमनस्क सा था उस समय। कई दिनों से ऐसा ही चल रहा था। पिछले कुछ महीनों में जैसे सब कुछ उलट-पुलट गया था ! पिता मर गये। नया-नया विवाह हुआ पर कनक का ठीक से सान्निध्य भी नही पा सका। फिर माँ बीमार पड़ गईं और फिर अचानक इतने बड़े कर्जे का बोझ कन्धों पर आ पड़ा।

मधुसूदन बाबू को देखकर जरा खिन्न हो गया था समर।

कोई जवाब न पाकर मधुसूदन बाबू ने कहा, तो बात सच है ?

समर ने कहा, कौन-सी बात ?

—यह मकान बेचने की खबर, तेरह लाख के कर्जे की खबर ?

—हाँ सब सच है, सोचा है मकान बेचकर सारा कर्जा चुका दूँगा। भुवनेश्वर बाबू ने भी यही सलाह दी है, हमारे वकील हैं वह।

ठगे से रह गये मधुसूदन वावू ।

वोले, सुना है गाड़ी भी वेच दी है ?

—हाँ, अब इस हालत में गाड़ी रखना उचित नहीं है ।

—कितना रुपया मिलेगा मकान वेचकर ? मधुसूदन वावू ने पूछा ।

—किसी तरह कर्जा निपट जाये तो सौभाग्य समझूँगा ।

—तो फिर आगे के लिये क्या तय किया ? कहाँ रहोगे ? और तुम्हारी माँ कहाँ रहेंगी ?

—वही सोच रहा हूँ अब ।

—कुछ निश्चय कर पाये ?

—नहीं ।

मधुसूदन वावू ने कुछ नहीं कहा इसके वाद । चले गये । पटसन के आफिस में बड़े वावू थे । बहुत बड़ा कारवार था—सत् असत् दोनों तरह का । जीवन में हार जाने वालों से उन्हें कोई हमदर्दी नहीं थी । स्वयं जीत गये थे इसलिये जीवन में पराजित लोगों के प्रति बहुत विराग था । उनके लिये तो मनुष्य वही था जो अपने पुरुपत्व के जोर से आगे बढ़े दस जनों पर हुकूमत करे । नहीं तो जीवित रहना ही अपराध था ! परन्तु समर की पराजय को उन्होंने अपनी पराजय समझा । इतनी खोज खबर लेकर, देखभाल कर बहन की शादी की थी, पर अंत में ऐसा होगा कौन जानता था ? गाड़ी तो नहीं ही रही, पर घर भी नहीं रहेगा । इससे तो किसी पेड़ पत्थर से व्याह दी होती !

अंत में वह दिन भी आ पहुँचा था । अवधारित दिन ।

उस दिन सुवह तक भी समर कोई जगह तय नहीं कर पाया था । सोचा था, कह-सुनकर और कुछ दिन इसी मकान में रहने की अनुमति माँग लेगा । जितने दिन माँ जीवित है ।

खरीदने वाले के पास नया-नया पैसा आया था । मकान खरीदकर फ्लैटों में वदलने का इरादा था उनका ।

समर ने कहा, मेरी माँ ज्यादा दिन जीवित नहीं रहेगी, अधिक से अधिक एक या दो महीने अगर और रहने दें ।

भद्रव्यक्ति में वास्तव में दया-माया थी । कहते ही राजी हो गये ।

बोले, मैं तो अभी मकान में हाथ नहीं लगा रहा, पूजा तक रह सकते हैं आप, पर उस समय खाली करना पड़ेगा ।

समर ने कहा था, बिल्कुल ! अगर तब तक माँ जीवित रहीं तो कोई न कोई व्यवस्था कर ही लूँगा। फिर पत्नी को भी तो लाना है। मकान तो ढूँढ़ना ही पड़ेगा।

परन्तु अन्तिम वात पूरी नहीं कर पाया समर।

उसी रात निस्तारिणी सिधार गईं !

कनक के पास खवर भिजवाई थी उसने, परन्तु श्मशान जाने तक वहाँ से कोई खवर नहीं आई थी।

जब अर्थी तैयार हो गई थी, सारा सामान आ गया था, वरानगर के दस-बीस लोग भी इकट्ठे हो गये थे, उस समय भी समर ने विधु से पूछा था, क्यों रे, तेरी भाभी आ गई ?

निराश स्वर में विधु ने कहा था, नहीं दादा बाबू।

श्मशान से लौटते-लौटते रात हो गई थी।

रात को अच्छी तरह सो नहीं सका था। अगले दिन सुबह उठने पर भी समर ने सोचा था कि शायद कनक आ गई थी। माँ के मरने की खबर पाकर भी नहीं आई कनक। ऐसा कैसे हुआ ? ऐसा कैसे हो सकता है ?

मिसेज दास ने पूछा, उसके वाद ?

बताते-बताते समर की आँखों से आँसू टपकने लगते और मिसेज दास अपनी सिल्क की साड़ी के पल्ले से उसकी आँखें पोंछ देतीं।

कहतीं, तुम्हारे लिये एक कप कॉफी और मगवाऊँ समर ?

समर कहता, नहीं।

वह कहती, तो फिर एक कप चाय ले लो ?

वह कहता, नहीं मिसेज दास, आप इतने मन से मेरी दुख की कहानी सुन रही हैं, यही वहुत है मेरे लिये। आपकी तुलना में क्या हूँ मैं ? एक नगण्य मनुष्य वस !

वास्तव में मिसेज दास की तुलना में समर क्या था ? एक सामान्य नगण्य क्लर्क ! भूधर वाबू अधर विश्वास को जानते थे, इसलिये अपने आफिस में नौकरी दे दी थी। सरकारी आफिस था। भूधर वाबू हेड कैशियर थे। उन्होंने ही दया करके मित्र के लड़के को घुसा दिया था। धीरे-धीरे सब भूल जाने की चेष्टा की थी समर ने। पुराने ऐश्वर्यमय

दिनों की याद भी मन में रखने की कोशिश नही की उसने और याद थी भी नहीं। सुबह नौ बजे खा-पीकर आफिस जाता और शाम को साढ़े चार बजे आफिस से निकलता। तब एकमात्र विलास होता सड़कों पर घूमना। कभी मैदान में, कभी कर्जन पार्क में, कभी आउटरम घाट पर गंगा के किनारे-किनारे।

मिसेज दास नें पूछा, कौन कनक ?

समर ने कहा, वह फिर मेरे पास नहो आई मिसेज दास। मैं गरीब हूँ। मेरे पास न गाड़ी है न मकान, फिर भला वह क्यों मेरे पास आयेगी ? कौन होता हूँ मैं उसका ?

समर बार-बार यही सोचता था, कनक उसकी क्या लगती है ? कुछ भी तो नहीं।

अन्तिम बार की बात भी याद थी समर को।

एक बार वहाँ गया था वह।

फाटक की कुंडी खटकाते ही मधुसूदन बाबू निकल आये थे।

पूछा था, कौन ?

अँधेरा घिर आया था। सड़क पर भीड़ बढ़ गई थी। गैस के क्षीण प्रकाश में मधुसूदन बाबू का चेहरा कैसा तो कठोर सा लगा था समर को। या गलती हुई थी उससे ? मधुसूदन बाबू नहीं थे। कहीं कोई मुसीबत तो नहीं आ पड़ी थी उन पर ?

—मैं, समर ने कहा था।

—मैं कौन ?

यह कहकर सिर झुकाकर अच्छी तरह देखा था उन्होंने।

समर बोला था, मैं समर।

—ओ······अचानक कैसे ?

इस घर का जमाई था वह, उसे भी कुछ सोचकर आना पड़ेगा ? और कौन-सा उद्देश्य हो सकता था भला उसका वहाँ आने का ?

तब भी उसने कहा, बहुत दिन हो गये थे मिले इसलिये······

आगे की बात पूरी मधुसूदन बाबू ने कर दी थी—

—इसलिये मिलने चले आये ? आजकल हो कहाँ ?

—अभी तो माधव सिकदार लेन के एक मेस में आ गया हूँ।

—अब क्या करने का इरादा है ?

मधुसूदन बाबू का स्वर बड़ा तीखा-सा लगा था।

पर बोला था, नौकरी की कोशिश कर रहा हूँ, तब मकान किराये पर ले लूँगा।

—फिर !

—फिर—फिर कनक को हमेशा के लिये तो यहाँ नहीं छोड़ा जा सकता, मकान लेते ही उसे ले जाऊँगा।

यह सुनकर उनका चेहरा और सख्त हो गया था।

गम्भीर स्वर में कहा था, अपनी चिंता तुम खुद करो, कनक को अब उसमें मत घसीटो।

उसने एकदम से कहा था, नहीं-नहीं, उसे बिल्कुल नहीं घसीटूँगा, पर उसके बारे में भी तो मुझे ही सोचना है, मेरे अलावा और—

—नहीं, तुम्हें नहीं सोचना पड़ेगा अब, उसके बारे में सोचने वाले लोग हैं।

—मतलब ?

अपने आप समर के मुँह से निकल गया था। उसकी पत्नी थी कनक, उसके अलावा उसकी चिन्ता कौन करेगा ! विवाह के बाद पति के अलावा पत्नी की फिक्र और कौन करता है ?

मधुसूदन बाबू ने कहा था, मैं अभी अभी आफिस से आया हूँ, अभी तुमसे बात करने का वक्त नहीं है। फिर किसी दिन आना, मतलब समझा दूँगा।

—पर ?

शायद दरवाजा बंद करने जा रहे थे मधुसूदन बाबू। समर जल्दी से एक सीढ़ी चढ़ कर बोला था, पर मैं कनक से एक बार मिलना चाहता हूँ।

—इस वक्त मिलना नहीं हो सकता।

ठिठका रह गया था समर। पूछा था, क्यों ?

एकदम से जवाब नहीं दे पाये थे मधुसूदन बाबू। थूक निगलकर बोले थे—

*कनक के साथ तुम्हारा विवाह हुआ था, यह भूल जाओ तुम। कनक* से भी भूल जाने को कह दिया है मैंने और वह इस विवाह की बात भूल भी गई है।

—यह कैसे हो सकता है ? आप कह क्या रहे हैं ?

—मैं ठीक ही कह रहा हूँ, अपनी बहन की मैं दूसरी शादी करूँगा तुम्हारे जैसे निकम्मे के साथ वह जीवन नहीं बिता पायेगी।

जरा सोचकर समर ने अनुनय भरे स्वर में कहा था, मैं बस एक बार उससे मिलना चाहता हूँ, उसके मुँह से यह बात सुनना चाहता हूँ बस।

और मधुसूदन बाबू ने उसके मुँह पर जोर से दरवाजा बंद कर दिया था। बस इतना कहा था, तुमसे तो बात करना भी पाप समझती है वह।

उस अँधेरी गली में बंद दरवाजे के सामने खड़ा समर कुछ देर के लिये जैसे चेतना हीन हो गया था। फिर सीधा मेस में चला आया था।

उसके बाद कितने ही दिन बेचैनी में काटे थे। कई बार फिर से जाने का मन हुआ था पर मन को भरोसा नहीं हुआ था। फिर वहाँ के पते पर कई चिट्ठियाँ लिखी थीं कनक को।

लिखा था—

कनक,

तुम्हारे यहाँ आया था—अपने दुर्भाग्य के साथ तुम्हें जोड़ने नहीं वरन् तुम्हें पास लाकर अपना दुर्भाग्य भूलने के लिये आया था। परन्तु तुमसे मिलने नहीं दिया गया। निरुपाय हूँ मैं। तुम्हारे बिना कैसे यह जीवन बिताऊँ, यह तुम्हीं बता दो मुझे।

इति।
तुम्हारा ही
समर

इसी तरह कई चिट्ठियाँ लिखी थीं समर ने—एक के बाद एक। दिन पर दिन, महीनों उत्तर की अपेक्षा की थी। पर उत्तर नहीं आया। अंत में एक चिट्ठी मधुसूदन बाबू की आई थी।

उन्होंने लिखा था—

कनक को बार-बार चिट्ठी लिखकर परेशान मत करो उसे। मैं तुम्हें याद दिलाये देता हूँ कि कनक तुम्हारी कोई नहीं है। कनक ने सोच लिया है कि उसका ब्याह हुआ ही नहीं, वह अपने को कुमारी समझती है। अगर भविष्य में चिट्ठी न लिखो तो उसे खुशी होगी।

इति
मधुसूदन सेन

इसके बाद चिट्ठी लिखने या मिलने का कोई प्रश्न ही नही उठता था। समर वह सब भूल भी गया था। आफिस के काम में खुद को डुबो दिया था उसने, उसे ही अपना अवलम्बन मान लिया था। उसके कंधों पर सारा बोझा डालकर भूधर बाबू रिटायर हो गये थे। अब वह उस आफिस का कर्त्ता-धर्त्ता बन गया था। दायित्व मिलने से स्वय को भूलने का मौका भी मिल गया था उसे। काम के माध्यम से उसने अपना अतीत जैसे धो-पोछ कर साफ कर दिया था। कैसे दिन बीत जाता पता ही नहीं चलता। कैसे वर्ष चक्र के आवर्त्तन में आयु का तिल-तिल क्षय होता जा रहा था, स्वास्थ्य क्षीण होता जा रहा था, इसका हिसाब नही रक्खा था उसने, प्रयोजन ही नहीं समझा था।

इसी तरह दिन बीत रहे थे। और शायद इसी तरह माधव सिकदार लेन मे उस मेस से सारा जीवन बीत जाता, वह भूल जाता कि कनक के साथ उसका विवाह हुआ था, बरानगर की भैरव मल्लिक लेन के विश्वास घराने में उसका जन्म हुआ था। इसी तरह सारा अपमान गले के नीचे उतारकर शायद एक और आदमी नीलकंठ बन जाता, परंतु ऐसा हुआ नही।

अचानक बड़े अप्रत्याशित ढग से मिसेज दास से परिचय हो गया था।

मिसेज दास के घर आकर फिर से सब याद आ गया था। फिर से याद आ गया था कि उसे भी जिन्दा रहने का अधिकार था, अगर वह सब न होता तो उसका जीवन भी उनके अनुरूप हो सकता था।

कोई चैरिटी शो था, कही, कुछ दुखी लोगों की सहायता के लिये हो रहा था। जिसके टिकटों की बहुत-सी किताबें जगह-जगह बेचने के लिये दी गई थीं।

एक दिन आफिस में एक लड़के ने आकर कहा, मुझे मिसेज दास ने आपके पास भेजा है।

—कौन मिसेज दास ?

समर आफिस के काम में व्यस्त था। सिर उठाकर लड़के की ओर देखा। चुस्त स्मार्ट लड़का था—अवस्थापन्न व्यक्ति।

वह बोला, मिसेज दास हमारी सेक्रेटरी हैं, उन्होंने ही यह चैरिटी शो आर्गेनाइज किया है।

मिसेज दास ? दिमाग पर बहुत जोर डालने पर भी याद नहीं आया कि यह मिसेज दास कौन थी। मिसेज दास नाम की तो किसी महिला को वह नही जानता था। नारी के नाम पर तो बस एकमात्र कनक से से ही थोड़ी पहचान हुई थी—वह भी बस कुछ दिनों की थी। फिर तो किसी लड़की की ओर उसने कभी ठीक से देखा भी नही था।

लड़का बोला, मिसेज दास ने कहा है कि आपको ये हजार रुपये के टिकट बेचने हैं।

—हजार रुपये के टिकट ?

आश्चर्य में पड़ गया था वह। हजार रुपये के टिकट कैसे बेचेगा वह ? किसको जानता था वह ? कौन सुनेगा उसकी बात ?

लड़के ने कहा, मिसेज दास ने बहुत अनुरोध किया है आपसे।

—मुझसे ? मुझे कैसे जानती है वह ?

—वह सबको जानती है और उन्हें भी सब जानते है। वह अपने लिये कुछ नहीं चाहतीं—यह तो यह सब उन दुखियारों के लिये कर रही है, जिन्हें खाने पहनने को नसीब नही होता। वह स्वयं दस हजार के टिकट बेच रही हैं, आप लोगों को तो इतने थोड़े से ही दिये है। इतना भी सहयोग नही देगे तो कैसे काम चलेगा—

बहुत-सी बातें कह गया लड़का, मिसेज दास के गुणों का धड़ाधड़ बखान कर गया। वह अपने तन, समय और अर्थ से देश के लिये जो कर रहा है, उससे कितना हो पायेगा। सब मिलकर प्रयत्न करें तभी कुछ हो सकता था। नही तो देश के हजारों लाखों बेघर नगे भूखों को कौन देखेगा ? मिसेज दास के अकेले करने से कितना हागा ?

टिकट की कापी छोड़कर उस दिन चला गया था वह लड़का।

फिर किस तरह कुल पाँच दिनों में उसने वह हजार रुपये के टिकट बेच डाल थे, वह स्वय नही जानता था। देश की अजीब अवस्था थी उस समय और ऊपर से समर का अनुरोध। वह न तो किसी से बहुत घुलता मिलता था और न किसी पचड़े में पड़ता था। इसलिये उसे ज्यादा कुछ नहीं कहना पड़ा था लोगों से। टिकट की कापी सामने रखते ही सबने तुरत खरीद लिये थे।

फिर आया वही लड़का।

समर ने टिकट की कापी का आधा हिस्सा और रुपये उसके सामने रखकर कहा, यह लीजिये। मिसेस दास से कहियेगा जितना मुझसे संभव हो सका कर दिया।

अगले दिन टेलीफोन आया—वही लड़का बोल रहा था।

बोला, मिसेज दास आपसे बात करेंगी।

रिसीवर कान से लगाये रहा वह।

इधर से नारीकंठ सुनाई दिया—तुम्हें बहुत-बहुत धन्यवाद समर।

समर बोला, नही, नही, धन्यवाद की कोई जरूरत नहीं है, मुझे ज्यादा दिक्कत नही हुई।

मिसेज दास जरा रुककर बोलीं, भले ही न हुई हो, पर तब भी तुम्हें धन्यवाद देती हूँ। जिन्होने टिकट खरीदे हैं, उन्हें तुम मेरी तरफ से धन्यवाद दे देना।

हँस दिया समर। बोला, जरूर दे दूँगा।

उधर से आवाज आई, शो के दिन तुम आ रहे हो न ?

उसने कहा, मेरा तो कैश का काम है, फिर भी कोशिश करूँगा आने की।

—नही, कोशिश-वोशिश कुछ नहीं, आना पड़ेगा तुम्हें।

और वाकई में जाना पड़ा था उसे। बहुत बड़ा पंडाल था—विराट आयोजन देखकर चकित रह गया था वह। इतने दिनों तक सब चीजों से अपने को विच्छिन्न करके जैसे मैं अपना अस्तित्व ही भूल गया था वह।

नृत्य, गान, मैजिक व अभिनय का मिला-जुला मनोरंजन कार्यक्रम हुआ था। पूरा पंडाल लोगों से भरा हुआ था। प्रकाश से जगमगाता कलकत्ता शहर का एक अचल। परन्तु पूरे अनुष्ठान में जैसे मिसेज दास ही शीर्षमणि थी, उन्हीं को केन्द्र बनाकर जैसे सब कुछ हो रहा था। कितना प्रभावशाली व्यक्तित्व था, कहो कोई बाहुल्य नहीं था, न आचरण में और न निष्ठा में। हर पल वह लोगों से घिरी रही थीं—पुलिस कमिश्नर, मेयर से लेकर मिनिस्टर, डिप्टी मिनिस्टर, सेक्रेटरी तक सब के सब घेरे हुए थे उन्हे। कितनी श्रद्धा, कितना त्याग, कितनी निष्ठा थी। उस त्याग, उस निष्ठा व उस श्रद्धा के निकट आ पाने के कारण समर ने अपने को धन्य माना था।

अचानक वही लड़का जो टिकट बेचने को दे गया था, वहाँ से गुजरा

तो उसे देखकर बोला, अरे, आप यहाँ एक कोने में छुपे बैठे हैं। चलिये, अन्दर चलिये।

उसने कहा, नहीं, मैं यहीं ठीक हूँ।

—नही-नही, मिसेज दास पूछ रही थीं आपके लिये। चलिये।

अन्त में जाना पड़ा।

बड़े-बड़े एवं विख्यात लोगों को एक तरफ करके उसे मिसेज दास के सामने हाजिर किया गया।

उसे देखकर जैसे उल्लसित हो उठीं मिसेज दास।

बोली—ओ······तो तुम ही समर हो, कहाँ छुपे बैठे थे, कब से ढूँढ़ रही थी तुम्हें।

फिर बगल में खड़े एक मारवाड़ी को देखकर बोली, अरे मिस्टर अगरवाला, यहाँ हैं आप, कैसा लगा फंक्शन?

विगलित हो उठे मिस्टर अगरवाला।

उसके बाद फिर समर की ओर घूमकर मिसेज दास ने कहा, तो कब आ रहे हो तुम मेरे यहाँ, मिस्टर दास से तो तुम्हारा परिचय हुआ ही नही।

—आऊँगा किसी दिन समय निकालकर, समर ने कहा।

—नही-नहीं, किसी दिन नही, बुधवार को आओ। मैं इन्तजार करूँगी, वहीं खाना खाना उस दिन।

सैकड़ों काम थे मिसेज दास को। दसियों लोग तरह-तरह के अनुरोध लेकर आ रहे थे उनके पास। किसने नहीं खाया, किसको गाड़ी भेजनी थी, किसको घर भिजवाने के लिये गाड़ी का इन्तजाम करना था—सभी कामों के लिये मिसेज दास के परामर्श की जरूरत थी। पर इतने कामों के बीच भी उन्होंने समर को रोके रक्खा।

बोलीं, तुम्हारे साथ ठीक से बात ही नहीं हुई समर, तो तुम बुधवार को आ रहे हो न? देखो, मैं इन्तजार करूँगी।

समर को जाना ही पड़ा था उनके यहाँ।

स्तम्भित रह गया था वह। इतनी भलीं, इतनी भद्र, इतनी सरल थी वह! उनकी तुलना में समर क्या था भला? क्या हैसियत थी उसकी? कुल पाँच सौ रुपये मिलते थे—उसी में अपना खर्च, मेस का बिल व पिता का बचा कर्ज—सब कुछ करना पड़ता था। किसी तरह

चल रहा था बस। पर मिसेज दास ने जरा भी ख्याल किये बिना उसे अपना बना लिया जैसे।

जब वह पहुँचा, मिसेज दास बाथरूम में थी। खानसामा उसे ड्राइंग रूम में बिठाकर चला गया था। कमरे की साज-सज्जा देखकर चकित रह गया था वह। घर तो ऐसा होना चाहिये। एक कोने में एक छोटी तिपाई पर कैक्टस का मुरादाबादी गमला रखा था। दीवाल पर फ्रेम में मढ़ी एक जापानी पेन्टिंग थी—बाँस का पत्ता झड़ता हुआ दिखाया गया था। सीलिंग की आड़ में नीला प्रकाश था। सफेद पापलीन के कवर वाले तीन काउच थे और फर्श पर वेलवेट जैसा सफेद कार्पेट बिछा हुआ था।

झलमल करती आई मिसेज दास।

हँसकर बोलीं, तो तुम आ ही गये समर।

खड़े होकर समर ने कहा, आपके काम में शायद खलल डाल दिया मैंने आकर।

—अरे ऐसा क्या काम है मुझे। इसी पर अब तक मिस्टर सोनपार के साथ बात हो रही थी, मिस्टर सोनपार को तो जानते ही होगे तुम?

पहचान नहीं पाया समर। बोला, नहीं तो?

—अरे, ऐल्पियन जूट मिल के जनरल मैनेजर है, कल आस्ट्रेलिया जा रहे हैं, जाने से पहले मिलने आये थे। बड़े अच्छे आदमी हैं, लौटने पर तुम्हें उनसे मिलवा दूँगी।

फिर जैसे अचानक कोई बात याद आ गई हो, ऐसे बोलीं, अरे देखो, मैं तो भूल ही गई थी, बताओ क्या पियोगे तुम?

—आप परेशान मत होइये, समर ने कहा।

लेकिन मिसेज दास परेशान हुईं। आवाज लगाई—अब्दुल···।

फिर बोलो, बताओ क्या लोगे—चाय, काफी या ठंडा?

विनम्रता से समर ने कहा, मै कुछ भी नहीं लूँगा मिसेज दास। आप सचमुच परेशान मत होइये।

परन्तु मानी नहीं मिसेज दास। कोल्ड ड्रिंक पीना ही पड़ा था उसे। फिर सामने बैठी बातें करती रही थी वह। बीच में ही टेलीफोन बज उठा तो उन्होंने कहा—

—एक्सक्यूज मी समर, हैलो, हाँ, मिसेज दास बोल रही हूँ।

समर उनकी बातें सुनता रहा। कितनी तरह के लोगों से परिचय था उनका—छोटे-बड़े, अमीर बड़े-बड़े पदाधिकारी—जिनकी तस्वीरें अखबारों में छपती थी। ऐसे लोगों के टेलीफोन आते थे उनके पास। सबसे कितनी घनिष्ठता थी। सब कितनी खातिर करते थे मिसेज दास की। अपने को बड़ा उपकृत समझा था उसने। वह भी जैसे उन लोगों की पंक्ति में आ खड़ा हुआ था, उनमें से एक हो गया था।

मिसेज दास टेलीफोन पर कह रही थीं, नहीं-नहीं, अभी तो नहीं आ पाऊँगी, मेरे यहां गेस्ट है, बहुत व्यस्त हूँ मिस्टर बनर्जी, कल मिल सकती हूँ, कल शाम को तीन से चार तक फ्री हूँ मैं।

फिर जरा देर बाद रिसीवर रखकर पास आकर बैठ गईं।

बोली, क्या मुसीबत है, दो मिनट शांति से बैठकर बात करने का भी उपाय नहो है।

समर ने कहा, मैंने आकर आपको परेशानी में डाल दिया मिसेज दास।

—परेशानी ? परेशानी किस बात की ! मेरे लिये तो बल्कि अच्छा ही हुआ, नहीं तो मिस्टर बनर्जी के पल्ले में पड़कर मुसीबत में फँस जाती।

—मिस्टर बनर्जी कौन हैं ?

जरा अवहेलना के स्वर में मिसेज दास ने कहा, वह मिस्टर वीरेन बनर्जी हैं, हमारे मेयर।

तभी मिस्टर दास आ पहुँचे।

बोले, खुकू, मिस्टर मेटा आये हैं, रुपये दे दो।

मिसेज दास बोलो, कितने देने है, पूछा ?

—हाँ, कह रहे है, सात हजार चाहिये।

—तो दे दो, चेक बुक तो तुम्हारे पास ही है। कह दो अभी नहीं मिल सकती मैं, जरा बिजी हूँ। और हाँ, तुमसे मिलवा दूँ, यह समर है, समर विश्वास।

हाथ बढ़ाकर मिस्टर दास ने कहा, बहुत खुशी हुई।

समर भी हाथ बढ़ाकर मुस्कुरा दिया।

मिस्टर दास बोले, फिर किसी दिन बैठकर ठीक से बातें करूँगा आपके साथ। अभी तो जरा जाना है।

कहकर मिस्टर दास चले गये।

बड़े अद्भुत लगे मिस्टर दास समर को। प्रथम दिन उस मन्द नीले प्रकाश में मिसेज दास के निकट बैठकर उसे प्रतीत हुआ था कि पृथ्वी पर कहीं किसी कोने में शांति नाम की कोई चीज थी तो वह उस गृहस्थी में थी। वहाँ जैसे न तो कोई अभियोग था और न कोई अभाव। बात-बात मे वहाँ एक से एक बड़े आदमी के टेलीफोन आते थे। जिनका नाम सदा अखबारों की सुर्खियों में रहता था, वे उनके नित्य संगी थे। सारी दुनिया में जब उसके लिये अवहेलना एवं अवज्ञा की भावना थी तो वहाँ उसका सादर आमन्त्रण था। कितना अच्छा लगा था उस दिन समर को। ऐसा लगा था जैसे मात्र हजार रुपये के टिकट बेचने के बदले में उसे राजसुख मिल गया था।

चलते समय मिसेज दास बोलीं, फिर कब आ रहे हो समर?

उसने कहा, फिर आ जाऊँगा ऐसे ही किसी दिन आपको तंग करने।

मिस्टर दास भी आ गये थे। उन्होंने भी जल्दी ही किसी दिन आने का अनुरोध किया था।

लेकिन मिसेज दास ने वादा लिये बिना नहीं छोड़ा था।

बोलीं, बताकर जाओ कब आ रहे हो।

अन्त में वादा करना पड़ा था।

कहा था, शनिवार को आऊँगा।

और अपने वायदे के अनुसार शनिवार को पहुँचा था वह। परन्तु उस दिन एकान्त नहीं था। ड्राइंग रूम में और भी बहुत से लोग थे। देखने में सभी गणमान्य व्यक्ति लग रहे थे। अन्दर जाये कि न जाये, यह सोच ही रहा था कि मिसेज दास की नजर पड़ गई थी उस पर। एकदम पोर्टिको में आ पहुँची थीं और हाथ पकड़कर अन्दर लिवा ले गई थीं।

कहा था, बाप रे, कितने शर्मीले लड़के हो तुम, भागे जा रहे थे, क्यों?

झिझकते हुए उसने कहा था, मैं सोच रहा था, आप बहुत व्यस्त हैं शायद···इसलिये···।

—तो व्यस्त होने से चले जाना चाहिये? आओ बैठो, परिचय करा दूँ सबसे।

सबसे मिलवा दिया उन्होंने। पर वह शशोपंज में पड़ा रहा। बड़ा

अटपटा-सा लग रहा था उसे। किंतु मिसेज दास जैसे जादू जानती थीं। ऐसा अन्तरंग व्यवहार करती थीं, जैसे सब उनके अपने हों।

उसके लिये भी चाय आ गई। सबके सामने ही मिसेज दास उसकी ओर घूमकर बोलीं, इतना शर्माते क्यों हो तुम समर, मेरे घर को अबसे अपना ही घर समझना।

मिस्टर अगरवाला बोले, हम लोग तो सभी आपको अपना समझते हैं मिसेज दास।

मिस्टर मेटा, मिस्टर रतनलाल, मिस्टर बनर्जी सबने उनकी हाँ में हाँ मिलाई।

पान, सिगरेट, कॉफी, चाय, कोल्डड्रिंक जिसको जो चाहिये था आने लगा। हर चीज का इन्तजाम था। अब्दुल आकर बीच-बीच में देख जाता था। समय कैसे पंख लगाकर उड़ गया, पता ही नही चला समर को। रात के दस बज गये। रोज तो शाम काटे नही कटती थी।

बोला, अब चलूँ मिसेज दास, रात बहुत हो गई है।

पर उन्होंने उठने नहीं दिया। हाथ पकड़कर बिठा लिया।

बोलीं, जल्दी किस बात की है तुम्हें, देर हो भी गई तो क्या।

—मैं तो आपकी बात सोचकर कह रहा था।

—हमारे यहाँ का तो रोज का यही हाल है, दो-चार दिन आओगे तो पता चल जायेगा।

फिर एक-एक करके सब चले गये। परन्तु उसने जितनी बार भी उठना चाहा मिसेज दास ने उठने नहीं दिया।

उसके कहने पर कि 'आपको भी तो रात हो रही है मिसेज दास' उन्होने कहा था, मेरी चिन्ता क्यों कर रहे हो?

—आपके नौकर-चाकरों को भी तो देर हो रही है?

इस पर वह बोली थीं, होने दो, तुम उनकी फिक्र मत करो। पर घर पर तुम्हारा कौन इन्तजार कर रहा है? तुम्हें क्यों इतनी जल्दी है?

—मुझे तो कुछ भी जल्दी नहीं है मिसेज दास, मेरा इन्तजार करने वाला तो कोई भी नहीं है। लेकिन ज्यादा देर हो गई तो शायद ट्राम बस भी नहीं मिलेगी।

—तुम कोई सड़क पर तो नही बैठे हो। और फिर मेरे पास गाड़ी है, चरण सिंह छोड़ आयेगा तुम्हें—

तदुपरान्त प्रायः रोज समर का मिसेज दास के यहाँ जाना नियम सा बन गया था और रोज ही रात हो जाने पर उनका ड्राइवर मेस छोड़ कर जाता था, शुरू का संकोच खत्म हो गया था, मन की हर बात उनसे कहने लगा था वह, एकदम सहज हो गया था। और इतने बड़े शहर में किसी न किसी उपलक्ष के बहाने कोई न कोई आयोजन लगा ही रहता था। कभी स्थापना तो कभी बाढ़। कभी सेनेटोरियम तो कभी गरीब छात्र-छात्राओं की शिक्षा। अपना अमूल्य समय नष्ट करके मिसेज दास चैरिटी शो करती रहतीं।

कहतीं, उनके बारे में जरा सोचो समर, जो अपना सब कुछ खोकर, बिल्कुल निराश्रित होकर यहाँ आये हैं।

हजारों रुपये के टिकट बिकते। फिर पंडाल बनता। कभी-कभी मिनिस्टर मुख्य अतिथि बनकर आते। अखबारों में फोटो के साथ खबर छपती। लोग पढ़ते और मिसेज दास के स्वार्थ त्याग व अथक परिश्रम से अभिभूत हो जाते, शतमुख सराहते।

समर कहता, काश ! सब आप जैसे होते मिसेज दास !

वह कहतीं, मैं कितना कर पाती हूँ समर, मेरी कितनी क्षमता है।

समर कहता, जितना आप करती हैं, उतना ही कितने लोग करते हैं ?

मिसेज दास कहतीं, मेरे पास वक्त बहुत है न, इसीलिये मुफ्त की बेगार करती रहती हूँ।

वह कहता, सच, इन सब कामों में आपका कितना पैसा खर्च हो जाता है, किसी को अन्दाजा भी नहीं है।

—मैं जानना चाहती भी नहीं समर। यह जता कर गरीब-दुखियों का क्या फायदा होगा, बताओ ?

कहकर अपनी सिल्क की साड़ी का पल्ला ठीक करने के बहाने सोफे पर फैला देतीं वह। बहुत कीमती साड़ियाँ पहनती थीं मिसेज दास, परन्तु और कोई व्यसन नहीं था उन्हें, भोग-विलास की ओर जरा भी आकर्षण नहीं था।

कहा करती थीं, ऐश्वर्य का उपभोग करने का ख्याल आते ही देश के लोगों का चेहरा आँखों के सामने आ जाता है समर। जरा सोचो तो हमारे देश के कितने पर्सेन्ट आदमी ऐसे हैं, जो एक जोड़ी कपड़े में पूरा साल निकाल देते हैं, एक वक्त खाकर जीवन काट देते हैं।

मिस्टर दास से समर का मिलना बहुत ही कम होता था। उन्हें काम भी तो कम नहीं थे। घर, गाड़ी, दरवान, बावर्ची, खानसामा, बैरा—इन सबका खर्च कोई कम तो नहीं था। काम धंधा तो करना ही था। मिसेज दास की तरह केवल देशसेवा करने से तो काम नहीं चलता! फिर समाज में जैसा स्थान उसी के अनुसार रहन-सहन, उसका तालमेल बैठाने में आदमी को उतना ही सिर खपाना पड़ता है।

बातें करते-करते प्रायः रोज ही रात हो जाती।

मिसेज दास कहतीं, इस तरह कब तक रहोगे तुम?

वह कहता, मेरे जीवन में तो कुछ भी नहीं रहा मिसेज दास, जिसकी पत्नी हो साथ छोड़ जाये, उससे अधिक *अभागा और कौन होगा?*

—तुम अगर कहो तो मैं एक बार कोशिश करके देखूं?

—आप करेंगी कोशिश? सचमुच करेंगी?

खुशी से अधीर हो उठता समर।

कहता, मैं बस एक बार कनक से मिलकर दो बात पूछना चाहता हूं मिसेज दास।

—क्या, पूछोगे?

—पूछूंगा, मैंने स्वयं क्या अपराध किया है।

कहते-कहते उसकी आंखें भर आतीं। मिसेज दास गले में हाथ डालकर दुलार से उसकी आंखें पोंछकर कहतीं—

रोओ मत समर, मैं तुम्हारी मदद करूंगी।

एक दिन बोलीं, कनक का पता मेरी डायरी में लिख दो, देखती हूँ, किसी तरह उसे तुमसे मिलवा सकूं तो।

इतने दिन बाद जैसे समर को वास्तव में किसी से भरोसा मिला। अगर वह प्रयत्न करें तो कोई रास्ता निकल सकता था। कितने लोगों से मिलना-जुलना है उनका।

उसके बाद कई बार सबके चले जाने पर समर पूछता, कुछ खबर मिली मिसेज दास?

मिसेज दास कहतीं, अभी मिलना तो नहीं हुआ, पर पता लगा लिया है। एक दिन बोलीं, सुना है तुम्हारी कनक बड़ी तकलीफ में है।

—तकलीफ? कैसी तकलीफ?

उद्ग्रीव हो उठा समर।

बोला, कैसी तकलीफ मिसेज दास? बीमार थी क्या?

—हाँ, पर अब ठीक है, बस कमजोरी है थोड़ी।

—और क्या पता चला ?

—अब और कुछ नहीं बताऊँगी। थोड़े दिन और धीरज रक्खो।

इसके बाद वह प्रतिदिन मिसेज दास के घर जाकर बैठा रहने लगा। लोगों के सामने कुछ कह सुन न पाता, बस प्रतीक्षा करता रहता।

उसे उस तरह असन्तुष्ट चित्त देखकर मिसेज दास कान के पास आकर फुसफुसा जाती चले मत जाना समर, जरूरी बात करनी है तुमसे।

कई दिन बाद जब उसकी बेचैनी पराकाष्ठा को पहुँचने को थी, सबके चले जाने पर मिसेज दास ने कहा, तुम्हारी कनक को देखा था आज।

—देखा था ?

—हाँ, और बहुत सी बातें भी हुईं। सचमुच गलती तो तुम्हारी ही है। तुमने पत्नी की मर्यादा ही नहीं दी उसे।

समर ने पूछा, कनक ने कही यह बात ?

—क्यों नही कहेगी ? वह कितने कष्ट मे है, तुम नहीं समझोगे। तुम पर बहुत नाराज है वह। क्यों, तुम अपनी पत्नी पर जोर नहीं डाल सकते थे ? तुम्हारा कोई अधिकार नही है ?

—मैं भला कैसे जोर डालता ? उसके भाई ने मुझे घर में घुसने ही नही दिया।

—वह भी तो यही कह रही थी कि मेरे भाई का विश्वास करके मुझे छोड़ दिया। मुझे बुलाकर नही पूछ सकता था ? मैं कोई नहीं हूँ उसकी ?

—उसने कहा यह ?

—उसने कुछ गलत तो नही कहा समर। मैंने भी बाद को सोचा तो लगा उसकी बात ठीक थी।

कुछ क्षण चुप रहकर समर ने पूछा, आप उससे मिलीं कहाँ ? आप क्या चोरबागान गई थी ?

—नहीं, मैं नही गई थी, उसे ही बुलवाया था। जिस चेयर पर तुम बैठे हो, इसी पर आकर बैठी थी [illegible]। बातें करते-करते रोने लगी थी बेचारी।

—रोने लगी थी ?

—रोयेगी नहीं ? कौन औरत पति से इतने दिन दूर रह सकती है भला ?

समर ने कहा, आपने थोड़ी देर और क्यों नहीं रोक लिया उसे ? मैं आकर आमने-सामने बात साफ कर लेता।

गम्भीर स्वर में मिसेज दास ने जवाब दिया, यह ठीक नहीं होता समर, औरतों का दिल एक बार टूट जाता है तो आसानी से नहीं जुड़ता।

समर ने कहा, लेकिन आपने तो सब कुछ बता दिया न उसे ?

बुजुर्गों की तरह मिसेज दास ने कहा, जो कहना था कह दिया, क्या कहा यह तुम्हें जानने की जरूरत नहीं।

उत्सुकता से समर ने पूछा, अब क्या होगा मिसेज दास ? कनक से साक्षात नहीं होगा मेरा ! अब नहीं आयेगी वह ?

मिसेज दास बोलीं, देखो, क्या होता है। अचानक एक मुश्किल आ पड़ी है।

—कैसी मुश्किल ?

—असल में वही बताने को तो तुम्हें आज रोका है। कनक के भाई बड़ी भारी मुसीबत में पड़ गये है।

—किस मुसीबत में ?

—उन पर बहुत कर्ज चढ़ गया है। हालांकि कर्ज गृहस्थी के कारण हुआ है, पर कनक शादी के बाद भी इतने दिन उनके पास रहने के कारण स्वयं को जिम्मेदार मानती है।

—क्या करना चाहती है वह ?

—उसकी बातों से तो ऐसा लगा कि कुछ रुपये मिल जाने पर सारे झंझटों से छुट्टी मिल जायेगी और वह तुम्हारे पास आ जायेगी।

जल्दी से समर ने पूछा, कितने रुपये ?

—तुम दे सकोगे ?

—कनक के लिये मैं सब कुछ कर सकता हूं मिसेज दास। उसने बताया कितने रुपये चाहिये ?

—मुझे तो ऐसा लगा जैसे काफी बड़ी रकम है। तुम कहां से लाओगे उतना रुपया ?

—मैंने कुछ रुपया जोड़ा है। जरूरत पड़ने पर मैं कनक के लिये दसेक हजार तक का जुगाड़ कर सकता हूँ।

—ठीक है, मैं पूछकर बताऊँगी।

—कब मिलेंगी आप उससे ?

—ठीक नहीं है।

—कल नहीं मिल सकतीं ?

—तुम क्या कल तक रुपये जुटा सकोगे ?

—उसकी फिक्र मत करिये आप। वह तो जैसे भी होगा करूँगा ही। करना ही पड़ेगा मुझे कनक के लिये।

—अच्छा देखो, क्या कर सकती हूँ।

रात हो गई थी। कॉफी के दो दौर हो चुके थे। मिसेज दास ने पूछा, अब्दुल से एक और कप कॉफी लाने को कहूँ ?

समर बोला, नहीं, आज रात को नींद नहीं आयेगी मुझे।

—क्यों ? ज्यादा कॉफी पी ली इसलिये ?

—नही, इसलिये नहीं ! आज कनक की याद और अधिक सताने लगी है इसलिये—

वह दिन बड़ी बेचैनी में बीता समर का। आफिस के काम में डूबे रहने पर भी अकेलापन खाता रहा। पाँच बजते ही सीधा मेस चला आया और जल्दी से कपड़े बदलकर मिसेज दास के घर जा पहुँचा।

दरवाजा खोलकर अब्दुल ने कहा, मेमसाहब तो नहीं हैं हुजूर।

समर ने कहा, मैं इन्तजार करूँगा।

एक-एक क्षण भारी लगने लगा समर को, समय जैसे बीत ही नही रहा था।

थोड़ी देर बाद अब्दुल से पूछा, किसी के साथ गई हैं मेमसाहब ?

—जी हाँ, एक औरत के साथ में।

और कुछ पूछने में शर्म आई समर को। कैसी थी देखने में, कितनी उम्र थी, यह सब अब्दुल से तो पूछा नही जा सकता था। जाने क्या सोचे।

इतने में पोर्टिको में गाड़ी रुकने की आवाज आई और मिसेज दास जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाती कमरे में पहुँची।

समर ने खड़े होकर उत्सुकता से नजरें उठाईं।

मिसेज दास बोलीं, कनक को पहुँचाकर सीधी आ रही हूँ, तुम कब आये ?

—कनक आई थी ?

—मैंने बुलवाया था उसे।

समर ने शिकायत की, थोड़ी देर और रोक लेतीं उसे ?

पंखे का रेगुलेटर घुमाकर सोफे पर बैठते हुए मिसेज दास बोलीं, मैंने तो बहुत कहा उससे, पर वह मानी ही नहीं। कहने लगी तुम्हें मुँह दिखाने में शर्म आती है।

—क्यों, शर्म की क्या बात है ? ऐसा कौन-सा अपराध किया है उसने।

—मैंने भी तो यही पूछा था उससे कि ऐसा कौन-सा अपराध किया है तुमने कि अपने पति को मुँह दिखाने में शर्म आती है तुम्हें ? जानते हो, इस पर उसने क्या कहा ?

—क्या कहा ? पलटकर समर ने पूछा।

हँसकर मिसेज दास ने कहा, उसने कहा कि तुमसे रुपये माँगने के कारण वह अपने को बहु छोटा समझ रही है।

—क्यों, इसमें छोटा समझने की क्या बात है ? आपद-विपद में तो सभी को जरूरत पड़ती है। और मेरे पास तो हैं ही, किसी से माँगकर तो नहीं दे रहा।

—मैंने यही तो समझाया उसे कि समर ने तो रुपये तुम्हारे लिये ही इकट्ठे किये हैं।

समर ने कहा, हाँ, मैंने उसी के लिये रुपये अलग रख छोड़े थे, खर्च नहीं किये। जरूरत पड़ने पर भी खर्च नहीं किये। सोचा था, जब कनक आयेगी उसे दे दूँगा। उसकी जैसी मर्जी हो खर्च करे, चाहे गहने गढाये या कपड़ा बनवाये। विवाह के बाद मैं कुछ भी तो नहीं दे पाया उसे।

मिसेज दास बोली, तुम चिन्ता मत करो समर, मैंने समझा दिया उसे। तुम तो देख ही रहे हो कि पिछले कई दिनों से सारा काम-काज भूलकर जी-जान से तुम लोगों के मामले मे लगी हुई हूँ। तुम लोगों का मिलन हो जाये तो एक बोझा सर से उतर जाये। खैर, आज मामला काफी आगे बढ़ गया है।

—कहाँ तक ? उत्सुकता दिखाई समर ने।

उस ओर जैसे ध्यान ही नहीं दिया मिसेज दास ने। बोलीं, तुमने चाय तो पी ली ना ? अब्दुल ने चाय दी कि नहीं ?

समर झट से बोला, चाय की बात छोड़िये, आप कनक की बात बताइये।

मिसेज दास बोलीं, अब उसके बारे में तुम और मत सोचो समर। समझ लो कनक तुम्हारी फिर हो गई।

हताशा भरे स्वर में समर ने कहा, पर मुझे अभी भी भरोसा नहीं हो रहा मिसेज दास।

विश्वास के साथ मिसेज दास ने कहा, जब तक मैं हूँ तुम्हें फिक्र करने की जरूरत नहो है समर। मैं विश्वास दिलाती हूँ कनक को तुम्हारे हाथों में सौंपकर ही चैन से बैठूंगी।

—पर कब ? अब और देर मुझसे नहीं सही जा रही मिसेज दास। आप नहीं जानती कि मेरा एक-एक दिन और एक-एक रात कैसे बीत रही है। न सो पाता हूँ और न कुछ खाया पिया जाता है।

—बस, दो-चार दिन और सब्र करो।

समर ने पूछा, और वह रुपये की बात ? उसके बारे में कुछ नहो कहा आज उसने ?

—कहा था। कह रही थी कि भाई का मकान गिरवी पड़ा है, उसी के लिये रुपया चाहिये।

—कितना चाहिये ?

जरा चिन्तित स्वर में मिसेज दास बोलीं, रकम जरा ज्यादा है—बस यही मुश्किल है। पहले तो दस हजार कह रही थी, और अब""

अधीर होकर समर ने पूछा—अब कितना कह रही है ?

—इसीलिये तो चिंता में पड़ गई हूँ। इतना रुपया दे पाना शायद तुम्हारे लिये संभव नहो होगा।

फिर से पूछा समर ने, आप बताइये तो, मैं जैसे भी होगा कहीं से भी लाकर दूँगा।

मिसेज दास रकम बताने हो जा रही थीं कि पास की टेबिल पर रक्खा फोन बज उठा।

समर से 'एक्सक्यूज मी, एक मिनट' कहकर रिसिवर उठाया मिसेज दास ने और बोली, हैलो, कौन ? मिस्टर मेटा ?

फिर जरा रुककर कहने लगीं, मुझे क्यों घसीट रहे हैं इसमें ? हम ठहरे गरीब आदमी, इतना रुपया कहाँ से लाऊँगी ?

फिर चुप रहकर सुनने लगीं। कुछ क्षण बाद वोलीं, आप क्या कह रहे हैं मिस्टर मेटा, मैं तो हद से हद एक लाख दे सकती हूँ, इससे ज्यादा एक पैसा भी नही। सात दिन पहले ही तो पाँच सौ आयरन खरीदी हैं मैंने, हम तो चुपचाप करने वालों में से है, हमारे—

कहते-कहते रुक गईं फिर। अंत में वोलो, अच्छा ठीक है, अब जब आप कह रहे है तो मिस्टर दास से पूछूंगी, ठीक है, फिर यही तय रहा, अच्छा, गुड नाइट।

तदुपरान्त रिसीवर रखकर समर के पास आकर बैठ गईं वह और बोली, अब नही होता समर। जब सामर्थ्य थी, बहुत दिया। तुम तो देख ही रहे हो कैसा जमाना आ गया है। मिस्टर दास खून-पसीना एक करके कमाते हैं। मुझसे कुछ छुपा थोड़े ही है।

इन सब वातों में समर को कोई रुचि नहीं थी। बीच में ही वोला, फिर कनक ने क्या कहा मिसेज दास ?

इतनी देर बाद जैसे मिसेज दास को याद आया।

वोली, हाँ, मैं कह रही थी कि कनक ने कहा था कि अगर तुम पंद्रह हजार रुपये का इन्तजाम कर सको तो उसके भाई का कर्ज उतर जायेगा और फिर कनक के विवाह में भी उसके भाई का रुपया खर्च हुआ था।

जरा हिचकिचाया समर। वोला, पन्द्रह हजार ?

– हाँ पन्द्रह हजार। मैंने तो कहा उससे कि रकम बहुत ज्यादा हो गई है। दस हजार होते तो समर तुरत दे देता ! पन्द्रह हजार वह कहाँ से लायेगा। इस पर उसने क्या कहा जानते हो ?

—क्या कहा ?

– उसने कहा कि वहुत ही मजबूरी न हो तो क्या कोई इस तरह माँगता है और वह भी पति से ? सचमुच समर, मुझे लगा कि रुपया नहीं चुकाया गया तो मकान छोड़ना पड़ेगा उन्हें। फिर कहाँ जायेंगे बेचारे।

कुछ देर के लिये जाने किस सोच में पड़ गया समर।

फिर वोला, आप कनक से कह दोजियेगा कि मैं पन्द्रह हजार दूँगा ! दस हजार तो मेरे पास है, बाकी पाँच उधार ले लूँगा।

—उधार लोगे ?

—हाँ, ज्यादा सूद पर ले लूंगा। कनक के लिये मैं सब कुछ कर सकता हूँ मिसेज दास।

—तो फिर यही कह दूँगी कनक से।

—कब कहेंगी ?

—कल ही कह दूँगी, लेकिन तुम रुपये का कब तक इन्तजाम कर लोगे ?

—कल ही कर लूँगा।

मिसेज दास ने कहा, पर चेक से काम नहीं बनेगा।

समर बोला, तो कैश दे दूँगा, आपको दे जाऊँगा कल।

—ठीक है, तो यही तय रहा। कल किस वक्त आओगे तुम ?

समर ने कहा, जब आप कहें।

मिसेज दास बोलीं, तो फिर एक काम करो, परसों शाम को आओ तुम। कनक से भी उसी समय आने को कह दूँगी। तुम दोनों का मिलन करवा सकी तो समझूँगी कि वाकई जीवन में कुछ किया।

उठकर खड़ा हो गया समर।

मिसेज दास बोली, एक कप कॉफी और पियोगे समर ?

समर का मन हल्का हो गया था।

फिर से बैठते हुए बोला, दीजिये, आज एक और कप पीने के लिये मना नहीं करूँगा।

मिसेज दास ने चुटकी लेते हुए कहा, लगता है कनक को पाने के बाद तुम मिसेज दास को एकदम भूल जाओगे समर।

समर ने भावावेश में कहा, कभी नही भूलूंगा मिसेज दास, आपको हम लोग जीवन पर्यन्त याद रक्खेंगे, आप देख लीजियेगा।

मिसेज दास ने कहा, मैं भी वचन देती हूँ कि तुम दोनों को मैं जैसे भी होगा मिलाकर ही रहूँगी।

दूसरे दिन समर की सुबह बड़ी बेचैनी में कटी। बाजार खुलते ही अपनी घड़ी, अँगूठी और विवाह की अँगूठी बेच दी उसने। राधाबाजार में एक सुनार की दुकान थी, पुराना जान-पहचान वाला आदमी था।

निधि बाबू ने कहा, यह सब क्यों बेच रहे हो समर ? बिना बेचे काम नहीं चलेगा क्या ?

समर ने जवाब दिया, बहुत ही खास जरूरत न हो तो विवाह की चीजें कौन बेचता है भला !

—ऐसी कौन-सी मुसीबत आ पड़ी ?

—वह आप नहीं समझ पायेंगे ।

गिन कर रुपये जेब में रख लिये उसने । फिर उधार की फिराक में वह बाजार गया । सूद का धन्धा करता था आदमी । बहुत पहले बरानगर उनके घर आया करता था । कई बार उसके पिता से अच्छे सूद पर उधार लेकर बाजार में व्यापारियों को सौ प्रतिशत पर चढ़ा देता था ।

समर को देखते ही पहचान गये बेचाराम बाबू ।

बोले, आप यहाँ, मामला क्या है ?

समर ने कहा, तीन हजार रुपयों की जरूरत थी इसी वक्त । अगर आप दे दें तो जो सूद कहियेगा दे दूँगा ।

कारबारी आदमी थे बेचाराम बाबू ! बाजार मे लोगों से रुपये पर रुपया सूद लेते थे । इसमें दोनों में से किसी को भी नुकसान नहीं था ।

बोले, मैंने तो सुना था कि आप अच्छी नौकरी पर हैं ।

समर बोला, अच्छी हो या बुरी, नौकरी कर ही रहा हूँ, महीने में पाँच सौ रुपये भी मिल जाते हैं, पर आदमी पर वक्त-बेवक्त मुसीबत तो पड़ ही जाती है, नहीं तो आपके पास क्यों आता ?

—हाँ यह तो यह ही, यह तो यह ही ।

कहकर उन्होंने तीन हजार रुपये निकाल दिये और रसीद चार हजार की ले ली । देनी पड़ी समर को ।

अब बाकी बचे डेढ़ हजार ।

*आफिस में उस दिन कैश नहीं आया । पर तब भी जो कभी नही* किया था समर ने, वही किया । पन्द्रह सौ रुपये निकाल कर जेब में रख लिये । रजिस्टर में नहीं लिखे, सोचा धीरे-धीरे पूरे कर देगा । सारी इन्द्रियाँ कनक को देखने के लिये उन्मुख थीं । मिसेज दास ने वायदा तो किया था ।

तदनन्तर सारा रुपया पोर्टफोलियो में रखकर शाम को आफिस से निकलने लगा तो असिस्टेंट तारापद ने पीछे से आवाज दी—

बोला, सर ।

घूमकर समर ने पूछा, कुछ कहना है ?

—वह पन्द्रह सौ की एन्ट्री करने को मना किया आपने, तो फिर किस एकाउन्ट में पोस्ट करूँ !

समर ने कहा, उसे पोस्ट करने की जरूरत नहीं है। मैं परसों आकर जो करना होगा बता दूँगा।

आफिस से सीधा मिसेज दास के घर पहुँचा वह।

वह तैयार बैठी थीं। बोलीं, तुम्हारा ही इन्तजार कर रही थी समर, सोच रही थी इतनी देर क्यों हो रही है। लाये हो।

हाँफते हुए समर ने कहा, हाँ, लाया हूँ।

रुपये लेकर गिनते हुए मिसेज दास बोलीं, पता है, कनक ने तो मुझे डरा ही दिया था।

—क्यों ? समर ने पूछा—

—वह कह रही थी कि तुम रुपये नहीं दोगे।

—उसके मुँह से कैसे निकली यह बात ? और आपने भी उसका विश्वास कर लिया, क्यों ? जरा आश्चर्य से समर ने पूछा।

जल्दी से सफाई दी मिसेज दास ने, नहीं-नहीं, मैं क्यों विश्वास करती, मैं क्या तुम्हें जानती नहीं ?

कुछ देर चुप बैठा रहा समर, फिर पूछा, कनक कब आई थी ?

—आज बहुत जल्दी आ गई थी, मैं अभी जाकर उसे रुपये दे आती हूँ और कल यहाँ आने को भी कह आऊँगी।

—कल किस वक्त आयेगी वह ?

—तुम बताओ, तुम कब आओगे ?

समर ने कहा, कल मैं आफिस नहीं जाऊँगा, आप बताइये कब आना ठीक रहेगा।

कुछ सोचकर मिसेज दास ने कहा, तुम कल ठीक तीन बजे आना। कनक से भी उसी समय आने को कहूँगी—फिर तुम दोनों को अपने पार्लर में बिठाकर मैं ड्राइंगरूम में आ जाऊँगी। तुम दोनों एकान्त में आपस में निपट लेना।

समर ने कहा, ठीक है। आप रुपये दे आइये उसे।

मिसेज दास बोलीं, मैं अभी जाकर अपने हाथ से देकर आऊँगी।

समर दरवाजे पर पहुँचा ही था कि मिसेज दास ने पीछे से पुकारा सुनो समर, एक बात कहना भूल गई।

—कहिये ?

—कनक कह रही थी कि बहुत दिन बाद तुमसे मिलना होगा, इसलिये जरा डर लग रहा है उसे। तुम उसे ज्यादा मत डाँटना। बड़ी अच्छी लड़की है, कई दिनों से देख रही हूँ उसे। भाई के डर से तुम्हें चिट्ठी नहीं लिख सकी। अब भाई के दिन अच्छे नहीं रहे इसलिये जरा निकल पा रही है। मुझे वचन दो कि तुम उसे डाँटोगे नहीं?

वह बोला, आप यह क्या कह रही हैं मिसेज दास, मैं कनक को डाटूँगा? कनक मेरे लिये क्या है, इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकती—और ये रुपये किस तरह, कितनी मुश्किल से इकट्ठे किये हैं, किसी दिन बताऊँगा आपको। तब पता लगेगा आपको कि मैंने उसके लिये क्या नहीं किया।

अगले दिन समर की दोपहर जैसे बीत ही नहीं रही थी। उसे लग रहा था कि तीन जैसे बजेंगे ही नहीं, संसार की सारी घड़ियाँ रुक गई थीं। बार-बार घड़ी देख रहा था।

आफिस की छुट्टी थी फिर भी ऐसा लग रहा था कि काम बहुत था। दाढ़ी घिस-घिस कर बनाई थी, कपड़े बार-बार उल्टे-पल्टे थे—बहुत दिन बाद कनक से मिलेगा, इस पोशाक में कैसे जायेगा उसके सामने। सोच रहा था, वह भी बदल गई होगी। चोरबागान में भी बहुत परिवर्त्तन हो गया होगा। कनक की माँ मर गई थीं, भाई की उम्र हो गई थी। कर्ज सर पर था। एक दिन इसी भाई ने उसके मुँह पर दरवाजा बंद कर दिया था, उसी भाई का कर्ज चुकाने के लिये उसने अपनी घड़ी, अँगूठी बेच दी थी, सूद पर रुपया लिया था। आदमी में कितना बदलाव आता है। अहंकार करने लायक कुछ भी तो नहीं है दुनिया में। किस चीज का अहंकार करे आदमी! कुछ भी तो नित्य नहीं है। उसने ही क्या कभी सोचा था कि बरानगर का मकान बेचकर मेस में रहना पड़ेगा, कनक से बिछड़ना पड़ेगा और फिर से मिलन होगा। कहाँ मिसेज दास थीं और कहाँ वह था, मिलने की कोई सम्भावना ही नहीं थी—लेकिन परिचय होने पर एक के बाद एक घटनाएँ चलचित्र की तरह घटती चली गईं। उन्होंने उसकी कहानी सुनी और दया करके फिर से कनक से मिलाने के लिये भाग-दौड़ की। नहीं तो कौन किसी के लिये इतना करता है।

मेस से निकलते समय रसोइये से समर ने कहा, ठाकुर मैं जा रहा हूँ, दरवाजा बंद कर लो।

रसोइये ने पूछा, आज कितने बजे आयेंगे बाबू ?

ठिठककर खड़ा हो गया समर। उसी मेस में आना पड़ेगा उसे फिर से ? कनक को यहाँ लेकर आयेगा ! इस मेस में रहेगी कनक ? यहाँ कैसे रहेगी वह ? पर और कहाँ रहेगी वह ? पहले से ही कोई मकान किराये पर ले लेना चाहिये था उसे।

फिर एकदम से बोला, आज दो जनों का खाना रखना ठाकुर।

—दो जनों का ? आश्चर्य से रसोइये ने पूछा—

—हाँ, मेरे साथ एक जना और होगा खाने पर।

इतना कहकर वह सड़क पर आ गया। हाथ की घड़ी बिक गई थी समय देखने का उपाय नहीं था। एक दुकान पर खड़े होकर नजर डाली तो देखा डेढ़ बजा था कुल। मिसेज दास के घर पहुँचने में आधा घंटे से अधिक लगता ज्यादा से ज्यादा। फिर भी एक घंटा बाकी रहता। समस्या हुई वह घंटा कैसे बिताये। ट्राम से उतरकर पार्क में चला गया दोपहर में पार्क मे भी कोई नहीं होता। एक खाली बेंच पर बैठ गया जाकर।

नौकरी करने के बाद से ऐसी दोपहर नही देखी थी उसने। जब बरानगर में अपना मकान था, नौकरी करने की स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी, तब ऐसी खाली-खाली दुपहरी बिताया करता था, लेकिन उन दिनों तो सब कुछ ही भिन्न था, दुनिया का रूप ही और था।

अपने में लीन आकाश-पाताल सोच रहा था समर कि कहीं पास की किसी घड़ी के ढंग-ढंग दो घंटे सुनकर उछल पड़ा वह।

बस एक घंटा और रह गया था।

पार्क से निकल कर पैदल चल दिया वह! दूर ही कितना था। जरा जल्दी-जल्दी चलने पर पन्द्रह मिनट में पहुँचा जा सकता था। धीरे-धीरे टहलते हुए चलने लगा समर। सोचने लगा, तीन से पहले पहुँचना उचित नहीं होगा। मिसेज दास विलायती कायदे कानून की हिमायती थीं, हर काम घड़ी की सुई से होता था।

पर समय तो जैसे ठहर गया था। कब तक इन्तजार करता वह। समय से पहले ही जा पहुँचा। और दिन दरवाजा बंद रहता था, घंटी बजानी पड़ती थी, अब्दुल आकर दरवाजा खोलता था।

लेकिन उस दिन दरवाजा खुला हुआ था।

जाकर ड्राइंग रूम मे बैठ गया वह।

जरा देर बाद अब्दुल कमरे में आया तो समर ने पूछा, मेमसाहब है अब्दुल ?

रुआँसू होकर अब्दुल बोला, मेमसाहब चली गई हुजूर ।

—कहाँ चली गई ? कब आयेंगी ?

—यह तो नहीं मालूम हुजूर, अब नहीं आयेंगी वह ।

—क्यों ? नहीं आयेंगी तो जायेंगी कहाँ ? मिस्टर दास हैं ?

—वह भी चले गये । कोई नहीं है घर में ।

—कब गये ?

—कल रात को हुजूर । कल रात के गये अब तक नहीं आये ।

चौंक उठा समर । कहाँ गये दोनों ? कुछ कहकर क्यों नहीं गये ? डर सा लगने लगा उसे । अगर कनक नहीं आई तो ? वह भी कहीं गायब हो गई तो ?

समर ने फिर पूछा, गाड़ी लेकर गये है ?

अब्दुल बोला, हुजूर, गाड़ी तो बिक गई, चरणसिंह को कल हिसाब करके छुट्टी दे दी थी ।

तो फिर ? गाड़ी क्यों बेच दी मिसेज दास ने ? नई गाड़ी खरीदेंगी क्या ?

समर ने कहा, थोड़ी देर बैठता हूँ ।अब्दुल, क्या पता आ ही जायें ।

—ठीक है बैठिये—अब्दुल ने कहा ।

फिर बोला, आज सुबह से बहुत फोन आ रहे हैं हुजूर—सब मेम-साहब को पूछ रहे हैं ।

उसी समय एक सज्जन आये और पूछने लगे—

—मेमसाहब हैं ?

अब्दुल ने कहा, नही हुजूर न मेमसाहब है और न साहब ।

वह सज्जन बोले, कहाँ चले गये ? मेरा छह महीने का किराया बाकी है, आज देने को कहा था ।

अब्दुल बोला, हम लोगों को भी दो महीने से तनख्वाह नही मिली हुजूर—आज देने को कहा था ।

वह बोले, समझ गया । अब बैठकर क्या होगा । चलता हूँ ।

अब समर का भी जी धुकपुक करने लगा । पन्द्रह हजार रुपये दे गया था वह । तो क्या कनक को रुपये नहीं पहुँचाये उन्होने । देखते-देखते और कई लोग आ गये, उधर टेलीफोन भी बार-बार बजने लगा ।

मिस्टर अगरवाला, मिस्टर मेटा, मिस्टर सोनपार, मिस्टर बनर्जी—सब आ पहुँचे और खबर सुनकर सिर पकड़कर बैठ गये।

तभी समर को बाहर घूँघट निकाले कोई लड़की आती दिखाई दी।

बाहर जाकर खड़ा हो गया वह।

कनक!

पास आते ही कनक ने भी उसे देख लिया।

समर ने पुकारा, कनक?

मुँह उठाकर कनक ने पूछा, तुम यहाँ?

समर ने पूछा, इसका मतलब है, तुम्हें रुपये मिल गये?

अवाक रह गई कनक। बोली, कैसे रुपये?

—क्यों, तुमने मिसेज दास से कहा था न कि तुम्हें पन्द्रह हजार रुपयों की जरूरत है। मिले नहीं तुम्हें?

दो पल को तो कनक का मुँह खुला का खुला रह गया।

फिर बोली, मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा।

समर ने पूछा, तो फिर तुम यहाँ क्या करने आई हो?

पहले तो जरा हिचकिचाई कनक, फिर बोली, मिसेज दास ने आने को कहा था।

—क्यों? मिसेज दास से तुम्हारा परिचय कैसे हुआ?

उसने कहा, हम लोग जिस महिला समिति में सिलाई सीखती हैं, मिसेज दास उसकी प्रेसीडेन्ट हैं।

—तो यहाँ क्या करने आई हो?

—उन्होंने कहा था कि तुम्हें रुपये की बहुत तंगी है, आफिस के कैश से रुपये ले लेने के कारण जेल जाने की नौबत आ गई है, इसलिये तुम्हें देने के लिये अपना सारा जेवर उन्हें दे गई थी।

समर ने पूछा, सारा जेवर?

—हाँ, सारा जेवर, जितना भी शादी में मिला था।

समर ने कहा, वह तो बहुत सारा था, करीब तेरह हजार का होगा।

कनक बोली, हाँ। मिसेज दास कह रही थीं कि तुम्हें तेरह हजार की जरूरत है।

वहीं सर पकड़कर बैठ जाने को जी चाहा समर का।

कनक बोली, क्या हुआ? ऐसे क्यों कर रहे हो? क्या और रुपयों की जरूरत है?

समर बोला, मुझे एक रुपया भी नही मिला कनक, उल्टे मैं ही तुम्हें देने के लिये कल मिसेज दास को पन्द्रह हजार रुपये दे गया था।

—पर मुझे तो रुपये की जरूरत नहीं थी।

आश्चर्य से समर ने कहा—लेकिन मिसेज दास तो कह रही थीं कि तुम्हारा मकान बिकने वाला है। तुम्हारे भैया पर बहुत कर्जा चढ़ गया है।

—क्या ? चौक उठी कनक।

फिर बोली, मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं कही। मैं तो बस यह पता लगाने आई थी कि तुम्हें रुपये मिल गये या नहीं, और फिर भैया तो मर भी गये।

—कब ?

—बहुत दिन हो गये। तभी से मैंने स्कूल में नौकरी कर ली। पर मिसेज दास हैं कहाँ ?

—वह नहीं हैं, भाग गई हैं।

फिर जाने क्या सोचकर जोर से हँस पड़ा वह।

बोला, वह तो हुआ, वह हम दोनों को ही चूना लगा गईं, पर तब भी उन्हें नमस्कार करता हूँ, वह अगर इस तरह नही ठगती तो आज तुमसे मिलना कैसे होता ?

फिर जरा रुककर समर ने पूछा, लेकिन यह बताओ कि भैया के मरने के बाद तुमने एक बार भी मेरी खबर क्यों नहीं ली ?

कनक की आँखें छलछला आईं।

अवरुद्ध कंठ बोली, क्यों लेती ? तुम दूसरा विवाह करके सुख चैन से हो, मैं बीच में आकर क्यों परेशान करती ?

ठगा सा रह गया समर।

बोला, मैंने विवाह कर लिया ? यह किसने कहा तुमसे ? किससे सुना, बताओ ?

गर्दन झुकाकर कनक ने कहा, मिसेज दास ने। उन्होंने सब बता दिया है मुझे।

मुझे याद है कि इस मामले के इन्वेस्टिगेशन का भार मुझ पर ही पड़ा था। रिश्वतखोरी पकड़ने की नौकरी में कुछ ही साल था मैं।

अनेकों तरह की अभिन्नताएँ हुई थी उस नौकरी में। उनमें यह समर और कनक की भी घटना थी। आप लोगों को अगर यह कहानी अच्छी लगे तो इस तरह की और भी कहानियाँ सुनाऊँगा। कनक और समर आज भी कलकत्ते में एक फ्लैट में रहते हैं। प्रायः मिलना होता है। सुखी जीवन है उनका मैंने बस उनका नाम-धाम बदल दिया है। नहीं तो सब सच है।

और निवेज दास? उनका पता नहीं चला। वह शायद किसी और शहर में जाकर अभी भी यही धंधा चला रहे हैं।